प्रस्तावना

भारतवर्ष के प्राचीन ग्रन्थों मे वेदों के उपरान्त ऐतिहासिक दृष्टि से महाभारत का महत्त्व बहुत अधिक है। प्राचीन काल मे अश्वमेध आदि जो दीर्घसत्र अथवा बहुत दिनों तक चलनेवाले यज्ञ हुआ करते थे उन यज्ञों मे अवकाश के समय बहुत-सी ऐतिहासिक गाथाएँ अथवा आख्यान कहने या पढने की प्रथा थी। ऐसे अवसरो पर पढे जानेवाले अनेक ऐतिहासिक आख्यान महाभारत मे एकत्र किये गये हैं। इसके अतिरिक्त महाभारत में स्थान-स्थान पर धर्म, तत्त्वज्ञान, व्यवहार, राजनीति आदि के सम्बन्ध मे इतना विस्तृत विवेचन किया गया है कि वह धर्म ग्रन्थ अथवा राजनीति ग्रन्थ ही बन गया है। इस ग्रन्थ से हमे प्राचीन काल के भारत की परिस्थिति के सम्बन्ध मे विश्वसनीय और विस्तृत प्रमाणों के आधार पर अनेक ऐतिहासिक बातो का पता चलता है। प्रत्येक भारतीय आर्य इस ग्रन्थ पर बहुत अधिक श्रद्धा रखता है। अतः लोगों के मन मे यह जिज्ञासा उत्पन्न होना बहुत ही सहज है कि इस ग्रन्थ से कौन कौन से ऐतिहासिक अनुमान किये जा सकते हैं। इस 'महाभारत मीमांसा' ग्रन्थ में पाठकों के सामने जो बातें रक्खी जायँगी वे संक्षेप मे इस प्रकार हैं—(१) महाभारत ग्रन्थ किसने लिखा और उसमें किस प्रकार वृद्धि हुई। (२) इस ग्रन्थ मे दिये हुए तथा बाहरी प्रमाणों से इसका कौन सा समय निश्चित होता है।

(३) इस ग्रन्थ में जिस भारतीय युद्ध का वर्णन है वह काल्पनिक है या ऐतिहासिक। (४) यदि वह युद्ध ऐतिहासिक है तो किस समय और किस किस में हुआ।

महाभारत में जिन परिस्थितियों का वर्णन है उनके अनुसार एक ओर तो महाभारत ग्रन्थ वैदिक साहित्य तक जा पहुँचता है और दूसरी ओर अर्वाचीन काल के बौद्ध और जैन ग्रन्थों तथा ग्रीक लोगों के प्राचीन इतिहास ग्रन्थों से आ मिलता है। अत उक्त विवेचन करते समय हमें जिस प्रकार वैदिक साहित्य का आधार लेना पडेगा उसी प्रकार बौद्ध और जैन ग्रन्थों की ओर विशेषत ग्रीक लोगो के ग्रन्थों की बातो से उसका मेल मिलाना पडेगा। वास्तव में महाभारत ग्रन्थ का काल बहुत विस्तृत है। इसलिए भिन्न भिन्न समय की परिस्थिति का वर्णन करते हुए हमें 'महाभारत काल' के अर्थ में कुछ भेद करना पडा है। 'महाभारत काल' से हमने 'महाभारत' के अन्तिम स्वरूप के समय का अर्थात् सिकन्दर के समकालीन ग्रीक लोगों के समय का अर्थ लिया है। और 'महाभारत युद्धकाल' शब्द का प्रयोग हमने महाभारती-काल के प्रारम्भ के समय के सम्बन्ध में किया है और समस्त महाभारत काल के सम्बन्ध में सामान्यत 'भारती काल' शब्द का प्रयोग किया है।

विषय-सूची

पहला प्रकरण

महाभारत के कर्ता

यह बात सर्वत्र मानी गई है कि महाभारत ग्रन्थ में एक लाख अनुष्टुप् श्लोक हैं और उसके कर्ता कृष्ण द्वैपायन व्यास हैं। वास्तविक श्लोक-संख्या, महाभारत के अनुसार, खिलपर्व सहित ९६,२४४ है। यदि खिल पर्व को छोड़ दें तो वह संख्या ८४,२४४ है। वर्तमान समय में उपलब्ध बम्बई के संस्करणों में, खिलपर्व को छोड़ देने पर श्लोक-संख्या ८४ ५२५ अथवा ८३,८२६ है, और हरिवंश सहित वह संख्या कम से कम ९५,८२६ तथा अधिक से अधिक १,००,०१० है। इस कथन का कि महाभारत ग्रन्थ में क़रीब एक लाख श्लोक हैं, वस्तुस्थिति से मेल है। यह असम्भव जान पड़ता है कि इतने बड़े ग्रन्थ की रचना एक ही मनुष्य ने की हो। यही अनुमान होता है कि महाभारत के रचयिता एक से अधिक होंगे। महाभारत के ही अनुसार ये रचयिता तीन हैं—व्यास, वैशम्पायन और सौति। भारतीय युद्ध के बाद व्यास ने 'जय' नामक इतिहास ग्रन्थ की रचना की। यह इतिहास व्यास के शिष्य वैशम्पायन ने पाण्डवों के पौत्र जनमेजय को उस समय सुनाया जब उसने सर्पसत्र किया था, और वहाँ उस कथा को सुनकर सूत लोमहर्षण के पुत्र सौति उग्रश्रवा ने शौनकादि ऋषियों को सुनाया, जो नैमिषारण्य में सत्र कर रहे थे। इस बात का उल्लेख महाभारत में ही है। इसमें सन्देह नहीं कि जो प्रश्नोत्तर वैशम्पायन और जनमेजय के बीच हुए होंगे वे व्यास के मूल ग्रन्थ से कुछ अधिक अवश्य होंगे। इसी प्रकार सौति और शौनक आदि ऋषियों के बीच

जो प्रश्नोत्तर हुए होंगे, वे वैशम्पायन के ग्रन्थ से अधिक होंगे। सारांश, व्यास के ग्रन्थ को वैशम्पायन ने बढ़ाया और वैशम्पायन के ग्रन्थ को सौति ने बढ़ाकर एक लाख श्लोक का कर दिया।

पहली बात तो यह है कि इस ग्रन्थ के तीन नाम हैं। आदिपर्व में तथा अन्तिम पर्व में कहा है कि यह 'जय नामक इतिहास' है। आगे चलकर उसे 'भारत' नाम प्राप्त हो गया और जब उसका विस्तार बहुत बढ़ गया तब उसे 'महाभारत' कहने लगे। इस प्रकार व्यास के ग्रन्थ को जय, वैशम्पायन के ग्रन्थ को भारत और सौति के ग्रन्थ को महाभारत कह सकते हैं।

महाभारत का प्रारम्भ तीन कथाओं से होता है। राजा उपरिचर के आख्यान से (आ० अ० ६३) व्यास के ग्रन्थ का आस्तीक के आख्यान से (आ० अ० १३) वैशम्पायन के ग्रन्थ का और सौति के ग्रन्थ का मनु शब्द अर्थात् वैवस्वत से आरम्भ होता है। ठीक-ठीक नहीं बताया जा सकता कि व्यास के मूल ग्रन्थ में कितने श्लोक हैं। पाश्चात्य विद्वानों का कथन है कि उनकी संख्या ८,८०० होगी। परन्तु यह मत ग्राह्य नहीं है। यह तर्क के आधार पर कहा गया है। वास्तव में ८,८०० की संख्या व्यास के कूट-श्लोकों की है। व्यास ने रात दिन परिश्रम करके तीन वर्ष में अपने ग्रन्थ को पूरा किया था। व्यास के समान कवि के लिए प्रतिदिन आठ से अधिक अनुष्टुप् श्लोक रच डालना बहुत सहज था। वैशम्पायन के भारत' में श्लोकों की संख्या २४,००० होगी। महाभारत में कहा है कि भारत-संहिता २४००० श्लोकों की है। और सौति ने वैशम्पायन के 'भारत' में उपाख्यान आदि जोड़कर एक लाख श्लोकों का 'महाभारत बना डाला। वर्तमान प्रचलित महाभारत में श्लोकों की जो संख्या पाई जाती है, वह सौति की बतलाई हुई संख्या से १००० कम है।

सौति ने अपने ग्रन्थ के १८ पर्व बनाये हैं। वैशम्पायन ने अपने भारत में जो पर्व बनाये हैं, वे छोटे हैं और उनकी संख्या १०० है।

यह बात महाभारत में दी हुई सौति की अनुक्रमणिका से प्रकट है। सौति ने इन छोटे पर्वों को एकत्र कर अपने वृहत् ग्रन्थ के १८ पर्व किये। इसका परिणाम यह हुआ कि एक बड़े पर्व में उसी नाम के छोटे पर्व शामिल हो गये। हरिवंश खिलपर्व समझा जाता है। 'खिल' का अर्थ है पीछे से जोड़ा हुआ। इसे सौति ने ग्रन्थ के विषय की पूर्ति के लिए जोड़ा है। इसी लिए उसको 'खिलपर्व' नाम देकर उन्नीसवाँ पर्व बनाया है। उसमें छोटे छोटे तीन पर्व हैं। मालूम होता है कि पर्वों का कर्ता सौति नहीं है।

वर्तमान महाभारत के रचयिता व्यास, वैशम्पायन और सौति काल्पनिक व्यक्ति नहीं हैं। व्यास भारती युद्ध के समकालीन थे। महाभारत के कई वर्णन प्रत्यक्ष देखे हुए जान पड़ते हैं। उनमें कई बातें ऐसी हैं जिनकी कल्पना कोई कवि पीछे से नहीं कर सकता। वैशम्पायन व्यास के एक शिष्य थे। इनका नाम आश्वलायन गृह्य-सूत्र में आया है। ये अर्जुन के पौत्र जनमेजय के समकालीन थे। सूत और सौति के ऐतिहासिक व्यक्ति होने में सन्देह नहीं है। पर भारत के आरम्भ में जो यह लिखा गया है कि सर्पसत्र के समय वैशम्पायन के मुख से मैंने भारती कथा सुनी, यह अतिशयोक्ति है। सौति और वैशम्पायन में कम से कम कई सौ वर्षों का अन्तर है।

जब यह प्रतिपादन किया जाता है, कि महाभारत में अमुक भाग सौति का बढ़ाया हुआ है तब श्रद्धालु पाठकों के मन की प्रवृत्ति में रसभङ्ग हो जाने का भय होता है। परन्तु ऐसी प्रवृत्ति के लिए कोई कारण नहीं है। पहले तो ग्रन्थ के वास्तविक स्वरूप को जान लेने से पाठकों को आनन्द हुए बिना न रहेगा। दूसरे प्रत्येक मनुष्य की यह स्वाभाविक इच्छा होती है कि असम्भाव्य कथाओं का मूल स्वरूप मालूम हो जाय। तीसरे ग्रन्थ और कथा की जाँच विवेचक दृष्टि से करने पर ग्रन्थ और कथा का जो स्वरूप शेष रहता है, वह इतना मनोहर और उदात्त है कि व्यास तथा महाभारत के सम्बन्ध में पाठकों के हृदय में रहनेवाला पूज्यभाव रत्ती भर भी नहीं घट सकता।

आवश्यक था। सनातनधर्म के अन्य और आवश्यक अङ्ग भी हैं, जैसे यज्ञ, याग, तीर्थ, उपवास, व्रत, दान आदि। इनका भी विस्तृत वर्णन महाभारत में स्थान स्थान पर सौति ने किया है। हिंसा का विषय यज्ञ के सम्बन्ध में बहुत महत्त्व का है। सनातनधर्मियों में बौद्धों के पूर्व से ही यह वाद विवाद हो रहा था कि यज्ञ में पशु का वध किया जाय या नहीं। वैदिक मत के अभिमानी लोग पशुवध को आवश्यक मानते थे। सौति ने दोनों के मतों को मान्य समझकर महाभारत में स्थान दिया है।

(२) कथासंग्रह—महाभारत का विस्तार करने में सौति का दूसरा उद्देश्य कथाओं का संग्रह करना था। अनेक कथाएँ लोगों में अथवा छोटी-छोटी गाथाओं में इधर-उधर बिखरी हुई थीं। उन कथाओं से सनातनधर्म को उत्तेजन मिल सकता था। उन सबको एकत्र कर सौति ने महाभारत को कथाओं का एक भाण्डारागार बना देने का प्रयत्न किया। उन सबको अलग-अलग करके बता देना कठिन है, तथापि ऐसी कुछ कथाओं के कुछ उदाहरण यहाँ दिये जाते हैं।

(१) षोडशराजकीय उपाख्यान द्रोणपर्व में है। इसका मूल-स्वरूप शतपथ ब्राह्मण में देख पड़ता है। अश्वमेध करनेवाले राजाओं की सूची इसमें दी गई है। सम्भव है, सौति द्वारा यह आख्यान शतपथ से लेकर जोड़ा गया हो। (२) रामायण की पूरी कथा वनपर्व के रामोपाख्यान में है। जिस ग्रन्थ का यह संक्षिप्त स्वरूप है वह वर्तमान वाल्मीकीय रामायण नहीं है, किन्तु उसका पहले का स्वरूप होगा। इसके कुछ कारण ये हैं—(क) ऋष्य-शृङ्ग द्वारा की गई पुत्रेष्टि का वर्णन इसमें नहीं है। (ख) रावण और कुबेर का सम्बन्ध भिन्न रीति से बतलाया गया है। (ग) रामचन्द्र से समुद्र की भेंट स्वप्न में हुई, साक्षात् नहीं। (घ) लक्ष्मण के शक्ति लगने और हनुमान् द्वारा द्रोण गिरि लाने की कथा इसमें नहीं है। (ङ) कुम्भकर्ण को लक्ष्मण ने मारा। (च) इन्द्रजित् के अदृश्य होनेवाले

रथ की कथा इसमें नहीं है। (छ) राम ने रावण को ब्रह्मास्त्र से मारा। (३) शल्यपर्व में जो सरस्वती-उपाख्यान है वह सौति का मिलाया हुआ है। युद्ध-वर्णन के समय किये हुए इस विषयान्तर में लगभग १९ अध्याय लगा दिये गये हैं। (४) विश्वामित्र के ब्राह्मण होने का आख्यान। (५) पौष्य और पौलोमी आख्यान। (६) नल और दमयन्ती एवं सावित्री के आख्यान।

व्यास और वैशम्पायन के समय से सौति के समय तक भारती इतिहास के सम्बन्ध में जो दन्तकथाएँ प्रचलित हो गई थीं उन सब का भी वर्णन सौति ने स्थान-स्थान पर किया है। अब इसका विचार किया जायगा कि ऐसी कथाएँ कौन सी हैं। (१) आस्तीक की कथा इसी प्रकार की है। यथार्थ में नाग मनुष्य ही होंगे, परन्तु समय के हेर-फेर से यह अर्थ हो गया कि वे नाग यानी सर्प थे। परीक्षित की हत्या करनेवाला तक्षक कोई मनुष्य रहा होगा। जनमेजय ने जो सर्पसत्र किया था वह नागजाति के मनुष्यों के संहार करने का प्रयत्न था। (२) अशावतार की कथा भी इसी प्रकार की है। आदिपर्व में प्रचलित विचार के अनुसार सौति ने अशावतार का वर्णन किया है। मूल भारत में कहीं-कहीं इसके विरुद्ध कुछ विधान हैं। इससे जान पडता है कि अशावतार की कल्पना नूतन है। (३) पाँच पतियों के साथ द्रौपदी के विवाह की कथा भी ऐसी ही है। उसका समर्थन करने के लिए भिन्न-भिन्न कथाएँ प्रचलित हो गई होंगी। इनको अपने ग्रन्थ मे शामिल करना सौति को आवश्यक प्रतीत हुआ होगा। (४) दुर्योधन के सम्बन्ध में कुछ चामत्कारिक कथाओं का प्रचलित हो जाना असम्भव न था। चित्ररथ की कथा इसी प्रकार की है (वन, २४१ और २५० अध्याय)। (५) दुर्वासा ऋषि द्वारा पाण्डवों के सताये जाने की भी कथा पीछे से बनी है।

(३) ज्ञान संग्रह—महाभारत में सौति ने सब प्रकार के ज्ञान का भी संग्रह किया है। भूगोल-सम्बन्धी जानकारी भीष्मपर्व के

आरम्भ में दी गई है। सभापर्व के 'कच्चित्' अध्याय में उत्तम राज्य प्रबन्ध के सब नियम बड़ी मार्मिकता से बताये गये हैं। ज्योतिष सम्बन्धी बातें वनपर्व और शान्तिपर्व में दी गई हैं। सांख्य और योग का वर्णन शान्तिपर्व में विस्तार-सहित किया गया है। वक्तृत्व शास्त्र सम्बन्धी कुछ तत्व सुलभा और जनक के संवाद में बताये गये हैं। न्यायशास्त्र के भी कुछ नियम इसी संवाद में दिये गये हैं।

(४) धर्म और नीति—सौति ने महाभारत में सनातनधर्म का पूर्ण रीति से उद्घाटन करने का यत्न किया है। आदिपर्व में जो उत्तर-ययाति आख्यान है, इसमें सनातनधर्म के तत्वों का वर्णन मार्मिक ढङ्ग से किया है। नीति के तत्त्व भी स्थान स्थान पर समझा दिये गये हैं। उद्योगपर्व में विदुर नीति के अध्याय व्यवहार चातुर्य से भरे हैं।

(५) कवित्व—महाभारत एक उत्तम महाकाव्य भी है। सब संस्कृत कवियों ने व्यास को वाल्मीकि की बराबरी का स्थान दिया है। व्यास के भारत के रसमय कवित्व की स्फूर्ति से सौति ने अपनी काव्यशक्ति प्रकट करने के लिए अनेक अच्छे अच्छे प्रसङ्ग साध लिये हैं। सौति की कवित्व शक्ति व्यास की शक्ति के समान न हो तो भी वह ऊँचे दर्जे की है। यह बात विराट पर्व में पाये जानेवाले अनेक मनोहर वर्णनों से सिद्ध है। महाभारत में कूट-श्लोकों की संख्या बहुत अधिक है। सम्भव है, यह काव्य चमत्कृति मूल में व्यास की ही हो और उसे सौति ने अपने चातुर्य से बहुत अधिक बढ़ा दिया हो। कवित्व प्रसङ्ग साधकर सौति ने इस ग्रंथ को सर्वोत्तम ग्रन्थ बनाया है। परन्तु इसी के साथ जो ऐसे उपाख्यान जोड़कर ग्रंथ का विस्तार किया है उससे महाभारत के कुछ अंशों में गौणता प्राप्त हो गई है।

(६) पुनरुक्ति—अनेक प्रसङ्गों की पुनरावृत्ति का दोष पाठकों के मन में खटकने लगता है। ऐसी पुनरुक्ति इस ग्रन्थ में प्रायः सर्वत्र है।

(७) अनुकरण—दूसरे प्रकार का दोष अनुकरण है। व्यास-वर्णित कई प्रसङ्गों का अनुकरण सौति ने किया है। इसका मुख्य उदाहरण वनपर्व का यक्ष प्रश्न नामक आख्यान है। सौति ने इसकी रचना नहुष-प्रश्न (वन० अ० १६५) के ढङ्ग पर की है। यक्ष के प्रश्न पहेलियों के समान देख पड़ते हैं। अनुकरण का दूसरा उदाहरण उद्योगपर्व का विश्वरूपदर्शन है। भगवद्गीता में जो विश्वरूप-दर्शन है वह मूल भारत का है। उसी के अनुकरण पर सौति ने उद्योगपर्व में जिस विश्वरूप दर्शन को स्थान दिया है, वह अप्रासंगिक है और उसका परिणाम भी कुछ नहीं हुआ।

(८) भविष्यकथन—ग्रन्थकारों की यह एक युक्ति है कि वे आगे होनेवाली बातों को पहले से ही बतला देते हैं। इस प्रकार के कुछ भविष्य कथन पीछे से सौति के जोड़े हुए जान पड़ते हैं, उदाहरणार्थ, स्त्रीपर्व में गान्धारी ने श्रीकृष्ण को यह शाप दिया है कि तुम सब यादव लोग आपस में लड़कर मर जाओगे। ऐसे शाप प्रायः सब स्थानों में पाये जाते हैं।

(९) कारणों का दिग्दर्शन—पूर्वकाल के प्रसिद्ध पुरुषों ने सदोष आचरण क्यों और कैसे किया, इसके सम्बन्ध में कुछ कारणों का बताना आवश्यक होता है। जैसे, पाँच पाण्डवों ने एक द्रौपदी के साथ विवाह कैसे किया, भीम ने दुःशासन का रक्त कैसे पिया इत्यादि। सौति ने महाभारत में ऐसी दन्तकथाएँ शामिल कर दी हैं जिनमें इन घटनाओं के कुछ कारण ग्रथित किये गये हैं।

इस प्रकार तीन-चार कारणों से सौति ने महाभारत का जो विस्तार किया है वह विशेष रमणीय नहीं देख पड़ता। परन्तु स्मरण रहे कि सौति-कृत कुल ग्रन्थ के उदात्त-स्वरूप में इस विस्तार से कुछ भी न्यूनता नहीं आने पाई है।

महाकाव्य की दृष्टि से भारत की श्रेष्ठता—इस जगत् में जो चार या पाँच अत्यन्त उदात्त और रमणीय महाकाव्य हैं उनमें व्यास का

यह महाकाव्य श्रेष्ठ है। इसका प्रधान विषय भारती युद्ध है। भारतवर्ष के प्राचीन इतिहास में भारती युद्ध से बढ़कर अधिक महत्त्व की कोई दूसरी बात नहीं है। जिस युद्ध में ५२ लाख वीर इतनी तीव्रता से लड़े थे कि एक पक्ष में सात और दूसरे पक्ष में तीन, कुल मिलकर दस, वीर जीवित बचे वह युद्ध होमर के इलियड के युद्ध से बहुत बड़ा था। भारत के प्राय सब राजा लोग इसमें शामिल थे। भारत के वर्तमान राजवश अपने अपने वशों की उत्पत्ति भारती युद्ध के वीरों से ही बतलाते हैं। इससे इस युद्ध को राष्ट्रीय महत्त्व प्राप्त हो गया है। जिस प्रकार ट्रोजन युद्ध यूनानियों को राष्ट्रीय युद्ध मालूम होता है, उसी प्रकार भारती युद्ध भारतवासियों को राष्ट्रीय महत्त्व का मालूम होता है।

महाभारत में वर्णित व्यक्तियों के चरित्र अत्यन्त उदात्त हैं। *युधिष्ठिर, भीम अर्जुन, कर्ण, द्रोण और भीष्म के चरित्रों से यह शिक्षा* मिलती है कि नीति के आचरण के सामने जीवन की कुछ भी परवा न होनी चाहिए। इस शिक्षा को भारत निवासी आर्यों के हृदयों पर प्रतिबिम्बित करा देने मे ये चरित्र हजारों वर्ष से समर्थ हो रहे हैं। दुर्योधन का पात्र भी उदाहरण स्वरूप है। उसका अटल निश्चय, उसका मानी स्वभाव, उसका मित्र प्रेम, उसकी राजनीति आदि बातें वर्णन के योग्य हैं। इस सम्बन्ध में व्यास ने होमर और मिल्टन को भी मात कर दिया है। उन्होंने द्रौपदी के पात्र को भी अद्वितीय बना लिया है। उसका धैर्य-सम्पन्न और गम्भीर स्वभाव, उसका पातिव्रत्य, उसकी गृहदक्षता आदि गुण अनुपम हैं। इतना होने पर भी वह मनुष्य-स्वभाव से परे नहीं है। वह यथार्थ म क्षत्रिय-स्त्री है।

पात्रों के स्वभाव का उद्घाटन भिन्न भिन्न वर्णनों से और विशेषत सम्भाषणों से हुआ करता है। इस सम्बन्ध में भी महाभारत का दर्जा श्रेष्ठ है। आदिपर्व में रगभूमि में दुर्योधन, कर्ण, अर्जुन और भीम के, सभापर्व में शिशुपाल और भीष्म के, वनपर्व में युधिष्ठिर, भीम और द्रौपदी के, द्रोणपर्व में धृष्टद्युम्न, सात्यकि, अर्जुन और

युधिष्ठिर के सम्भाषण उदाहरण-स्वरूप हैं। कौरव-सभा में श्रीकृष्ण का जो सम्भाषण हुआ वह तो सबमें शिरोमणि है। कर्णपर्व में शल्य और कर्ण का सम्भाषण तेज़ और जोरदार है। व्यास ने अपने काव्य में जो सम्भाषण दिये हैं उनसे पाठकों के मन पर नीति तत्त्व का उपदेश भली भाँति प्रतिबिम्बित हो जाता है और सत्यवादित्व, ऋजुता, स्वकार्य दक्षता, आत्मनिग्रह, उचित अभिमान, औदार्य आदि सद्गुणों का पोषण होता है।

महाभारत की वर्णनशैली ऊँचे दर्जे की है। वर्णन मे किसी प्रकार का गडबड नहीं देख पडता, शब्द सरल और जोरदार हैं तथा दृश्यों के वर्णन और स्त्री पुरुषों के स्वरूप, स्वभाव एव पहनावे के वर्णन हूबहू और मनोहर हैं। प्रत्यक्ष युद्ध का जो वर्णन व्यास ने किया है वह तो बहुत ही सरस है, यहाँ तक कि अद्वितीय भी कहा जा सकता है। महाभारत के युद्ध प्रसङ्गों की कथाओं को सुनकर वीर-रस उत्पन्न हुए बिना नहीं रहता।

सृष्टि सौन्दर्य के वर्णन महाभारत में बहुत नहीं हैं। जो हैं वे रामायण के वर्णन के समान सरस नहीं हैं। इतना होने पर भी वन-पर्व में हिमालय का जो वर्णन है, वह उसी के मुख से हो सकता है जो उस हिमाच्छादित ऊँचे प्रदेश में रहता हो। स्त्रियों और पुरुषों का जो वर्णन है वह अत्यन्त मनोहर और मर्यादायुक्त है। सभापर्व में युधिष्ठिर ने द्रौपदी का जो वर्णन किया है, वह देखने योग्य है। जिस समय भीष्म और द्रोण लड़ाई पर जाते हैं उसका वर्णन और आदि पर्व में रगभूमि म बिना बुलाये जानेवाले कर्ण का वर्णन चित्ताकर्षक है।

महाभारत की रचना मुख्यत अनुष्टुप् वृत्त में की गई है, और अनेक स्थानों में उपजाति वृत्त का भी उपयोग किया गया है। गम्भीर कथावर्णन और महाकाव्य के लिए ये वृत्त सब प्रकार से उपयुक्त हैं। महाभारत की भाषा गम्भीर और प्रौढ है। इसी प्रकार वह सरल और शुद्ध भी है। बोलचाल की भाषा का कोई प्रतिभाशाली कवि

जैसी भाषा का उपयोग करेगा, वैसी ही भाषा महाभारत की है। महाभारत में व्यासकृत जो मूल भाग है, उसकी भाषा विशेष सरस, सरल और गम्भीर देख पड़ती है। सौति के समय में बोलचाल में संस्कृत भाषा प्रचलित न थी, इसलिए उसके रचे भाग की भाषा में कुछ अन्तर हो जाना स्वाभाविक है। जो यह जानना चाहते हैं कि व्यास की भाषा कितनी प्रौढ़, शुद्ध, सरस और सरल है वे भगवद्-गीता की भाषा को देखें। संस्कृत के सम्पूर्ण साहित्य में भाषा की दृष्टि से गीता की समानता करनेवाला कोई ग्रन्थ नहीं है।

ऊपर बतलाये हुए गुणों के अतिरिक्त एक और गुण के कारण भी संसार के सब आर्य महाकाव्यों में महाभारत की श्रेष्ठता प्रस्थापित होती है। उसमें एक प्रधान हेतु है जो समस्त ग्रन्थ में एक सामान्य सूत्र के समान ग्रथित है और जिसके कारण इस काव्य के प्राण का परिचय स्पष्ट रीति से हो सकता है। किसी प्रसङ्ग का वर्णन करते समय व्यास के नेत्रों के सामने धर्म ही एक व्यापक हेतु उपस्थित रहता था। किसी आख्यान अथवा पर्व को लीजिए, उसका तात्पर्य यही देख पड़ेगा, इसी तत्त्व की जयध्वनि सुन पड़ेगी कि 'यतो धर्मस्ततो जय'। इस प्रकार धर्म और नीति को प्रधान हेतु रखने का प्रयत्न पूर्व अथवा पश्चिम के और किसी महाकाव्य में नहीं किया गया है।

दूसरा प्रकरण

महाभारत ग्रन्थ का काल

महाभारत में कहा है कि प्रचलित महाभारत में एक लाख श्लोक हैं। गुप्तकालीन एक लेख में 'शतसाहस्र्यां संहितायां' कहा है। इस लेख का काल ईसवी सन् ४४५ है। इससे प्रकट होता है कि महाभारत को उसका वर्तमान रूप ईसवी सन् ४०० के पहले प्राप्त

हुआ था। ग्रीक लेखक डायोन क्रायसोस्टोम ईसवी सन् की पहली सदी में दक्षिण भारत के पाण्ड्य आदि में आया था। उसने लिखा है कि भारत में एक लाख श्लोकों का 'इलियड' है। यद्यपि उसने महाभारत का नाम नहीं दिया है, तथापि उक्त उल्लेख का सम्बन्ध महाभारत से ही है। डायन क्रायसोस्टोम का समय यदि ईसवी सन् ५० के लगभग माना जाय तो यह स्पष्ट है कि सौति का महाभारत उससे अनेक वर्ष पहले बन चुका होगा। इस प्रकार महाभारत के काल की सबसे नीचे की मर्यादा सन् ५० ईसवी है। महाभारत में यवनों का उल्लेख बार-बार किया गया है। यह बात प्रसिद्ध है कि यवनों का और हमारा समीप का परिचय अलेक्जेण्डर के समय हुआ था। ऐसी अवस्था में अलेक्जेण्डर की चढ़ाई को अर्थात् ईसवी सन् के पहले लगभग ३२० वर्ष को महाभारत के काल की पूर्व मर्यादा कह सकते हैं। यह बात सिद्ध मानी जा सकती है कि ईसवी सन् के पहले ३२० से लेकर सन् ५० ईसवी तक एक लाख श्लोकों

और शक लोगों का साहचर्य प्रसिद्ध है। इसी से 'शकयवनम्' शब्द प्रचलित हुआ। ग्रीक लोगों के अनन्तर अथवा लगभग उसी समय शक लोगों ने भारत पर चढ़ाइयाँ कीं। उनका एक भाग पंजाब से होता हुआ मथुरा तक फैल गया था, दूसरा सिन्ध, काठियावाड़ होता हुआ मालवा तक चला गया था। इन शकों के साथ यूनानी भी थे। शकों ने उज्जैन को जीतकर वहाँ अपना राज्य स्थापित किया। इनका राज्य लगभग ३०० वर्ष तक रहा। इन्हीं के शासन में यवन-ज्योतिष और भारतीय ज्योतिष के शास्त्रवेत्ताओं ने राश्यादि घटित ग्रहगणित का आरम्भ किया। राशि, अश आदि के प्रचलित होने के इस निश्चित समय पर यदि ध्यान दिया जाय तो मालूम होगा कि महाभारत इस समय से पहले का है, क्योंकि उसमें राशियों का उल्लेख नहीं है। उधर ग्रीक लोगों की शूरता का वर्णन महाभारत में पाया जाता है। इससे निश्चय होता है कि यह ग्रन्थ ईसवी सन् से पहले ३०० वर्ष से इस ओर का होगा।

बौद्ध त्रिपिटक में भी राशियों का उल्लेख नहीं है। किसी काल का निर्देश करने के लिए उसमें नक्षत्रों का ही उपयोग किया गया है। त्रिपिटक अशोक के समय तक बने हैं। तब राशियों का प्रचार अशोक के बाद हुआ होगा।

सरस्वती आख्यान (शल्य पर्व, अ० ३७) में गर्ग का उल्लेख है। गर्गसंहिता नाम का जो ग्रन्थ उपलब्ध है वह इसी का बनाया होगा। इस संहिता में यवनों के द्वारा साकेत के घेरे जाने का प्रमाण है। यह ग्रन्थ ग्रीक राजा मेनएंडर के समय का अर्थात् ईसवी सन के १४५ वर्ष पहले का होगा। इसमें भी राशियों के नाम नहीं हैं। इसलिए मानना पड़ता है कि ईसवी सन् के पहले १४५ वर्ष से अनन्तर राशियों का प्रचार हुआ है।

इन सब बातों का निचोड़ यह है कि ईसवी सन् से पहले ३२० से २०० तक के समय में वर्तमान महाभारत का निर्माण हुआ है। ८

महाभारत के निर्माण काल का निश्चय करते समय अन्त.प्रमाणों ; सम्बन्ध में यह जानना चाहिए कि वेद, उपवेद, अङ्ग, उपाङ्ग, ाह्मण, उपनिषद्, सूत्र, धर्मशास्त्र, पुराण, इतिहास, काव्य, नाटक ादि में से किन किन का उल्लेख महाभारत में पाया जाता है।

गीता के अध्याय १३ के श्लोक ४ में 'ब्रह्मसूत्र' का नाम आया ै। बादरायण-कृत वेदान्तसूत्रों का निर्माण ईसवी सन् के पहले १५० से १०० तक के समय में हुआ है। इनमें बौद्ध और जैन मतों का, पाशुपत और पाञ्चरात्र मतों का भी खण्डन है। जब मौर्य-वंश का उच्छेद हो गया और पुष्यमित्र तथा अग्निमित्र ने ईसवी सन् के पहले १५० के लगभग मगध को अपने अधीन कर लिया तब यह ग्रन्थ बना होगा। यह आश्चर्य है कि इन ग्रन्थों का उल्लेख महाभारतान्तर्गत गीता के श्लोक में पाया जाय। इस आश्चर्य का कारण यह है कि महाभारत में बौद्ध और जैन मतों का खण्डन नहीं है। इसी प्रकार पाञ्चरात्र और पाशुपत तथा सांख्य और योग मतों का खण्डन न होकर उन सबका मेल मिलाया गया है। ऐसी दशा में महाभारत वेदान्तसूत्रों के पहले का होना चाहिए।

भगवद्गीता में ब्रह्मसूत्र शब्द का जो प्रयोग किया गया है वह बादरायण के वेदान्त सूत्र को ही कैसे लगाया जा सकता है? इस सूत्र को तो 'ब्रह्मसूत्र' कहीं नहीं कहा है। आचार्य ने उसे 'वेदान्त मीमांसा शास्त्र' कहा है। वेदान्त सूत्रकार ने सांख्य और योग दोनों का खण्डन किया है। भगवद्गीता में यह बात नहीं है। उसमें सांख्य और योग का स्वीकार किया गया है। जैसे भगवद्गीता में वैसे ही महाभारत में भी सांख्य और योग का खण्डन नहीं है। वेदान्त सूत्रों के समय ये दोनों मत त्याज्य माने गये थे। आश्वलायन के गृह्यसूत्र और बादरायण के वेदान्तसूत्र में महाभारत का उल्लेख है। वेदान्त सूत्र में महाभारत के वचन स्मृति कहकर उद्धृत किये गये हैं। अतएव ये दोनों ग्रन्थ महाभारत के बाद के हैं। उक्त दोनों ग्रन्थ-

कर्ताओं के नाम महाभारत में नहीं हैं। अनुशासनपर्व के चौथे अध्याय में आश्वलायन का निर्देश है। परन्तु यह आश्वलायन वेद-संहिता काल का ऋषि है, न कि सूत्रकार।

महाभारत में अनेक सूत्रों का निर्देश है। सभापर्व के कथित अध्याय में युधिष्ठिर से प्रश्न किया गया है कि गजसूत्र, अश्वसूत्र रथ सूत्र और यन्त्रसूत्र का अभ्यास तुम करते हो न। धर्मसूत्रों अथवा धर्मशास्त्र के सम्बन्ध में बहुत सा उल्लेख पाया जाता है। नीतिशास्त्र का नाम अनेक बार आया है। उसके कर्ता भी अनेक देख पड़ते हैं, जैसे शुक्र, बृहस्पति आदि। एक स्थान में मनु के धर्मशास्त्र का उल्लेख है। राजधर्म आदि विषयों में मनु के वचनों का उपयोग किया गया है। परन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि वे वचन वर्तमान समय में उपलब्ध मनुस्मृति के हैं। वर्तमान मनुस्मृति तो महाभारत के बाद की है।

महाभारत में पुराणों का उल्लेख बहुत है। स्वर्गारोहणपर्व में यह उल्लेख है—इस भारत में अठारह पुराण, सब धर्मशास्त्र और अङ्गों सहित चारों वेद एकत्र हैं। वर्तमान समय के लोगों की यह समझ है कि पुराण अठारह हैं और उन सब के कर्ता अकेले व्यास ऋषि हैं। यही समझ उक्त अवतरण में ग्रथित है। सम्भव है कि ये श्लोक महाभारत के भी बाद के हों। यदि ये श्लोक असत्य न मानकर यह माना जाय कि महाभारत के पहले ये अठारह पुराण किसी छोटे स्वरूप में होंगे तो आश्चर्य नहीं। वायुपुराण का उल्लेख वनपर्व के १९१वें अध्याय के १६वें श्लोक में पाया जाता है। ऐसी दशा में यह मानना पड़ेगा कि अठारह भिन्न भिन्न पुराण पहले से थे। इसमें सन्देह नहीं कि यदि पहले अठारह पुराण होंगे तो वे वर्तमान पुराणों से भिन्न अवश्य होंगे।

इतिहास शब्द भी महाभारत में अनेक बार आया है। द्रोणाचार्य का वर्णन करते समय कहा गया है कि वे वेद, वेदाङ्ग और इतिहास

के ज्ञाता थे। इससे अनुमान होता है कि पहले और भी कई इतिहास रहे होंगे। वेद और उपनिषद् महाभारत के पहले के हैं। यदि इनका उल्लेख महाभारत मे पाया जाय तो कुछ आश्चर्य है? इसमें सन्देह नहीं कि वर्तमान वेदाङ्गों के कर्ता और उनके ग्रन्थ महाभारत के पूर्वकाल के हैं। अगों में से ज्योतिष और निरुक्त का उल्लेख अधिक पाया जाता है। यास्क के निरुक्त और निघण्टु का महत्त्व शान्तिपर्व के ३४३वें अध्याय के ७२वें श्लोक मे वर्णित है और यहीं कोश का भी उल्लेख है। फलित-ज्योतिष की कुछ निन्दा की हुई जान पडती है। वनपर्व के २०९वे अध्याय में कहा है कि दो व्यक्तियों का जन्म एक ही नक्षत्र पर होता है, पर वे दोनों एक से ही भाग्यवान् नहीं होते। किसी ज्योतिष ग्रन्थ अथवा ग्रन्थकर्ता का उल्लेख कहीं नहीं है। शान्तिपर्व के ३४०वें अध्याय के ९५वें श्लोक में गर्ग का सम्बन्ध कालयवन के साथ लगाया गया है। यह गर्ग काल-ज्ञानी था और ग्रहों की वक्र गति को जानता था।

न्याय, वैशेषिक, साख्य, योग, पूर्व और उत्तर मीमासा जो छ दर्शन हैं, उनका एकत्र उल्लेख महाभारत में कहीं नहीं है। अकेले कपिल को छोडकर न्याय के कर्ता गौतम, वैशेषिक के कणाद, योग के पतञ्जलि, और उत्तर मीमासा के वादरायण का नाम महाभारत में नहीं है। हम पहले कह चुके हैं कि वादरायण के सूत्र महाभारत के बाद के हैं। पतञ्जलि ने अपने महाभाष्य में पुष्यमित्र के अश्वमेध का उल्लेख किया है। इससे पतञ्जलि का समय ईसवी सन् के पहले १५० से १०० के बीच में प्राय निश्चित हो जाता है। योगशास्त्र अथवा योगमत का उल्लेख महाभारत में हजारों स्थानों म पाया जाता है। यदि उस समय पतञ्जलि के योगसूत्रों की रचना हुई होती तो उनका उल्लेख अवश्य किया गया होता। पूर्व मीमासा के सूत्र कर्ता जैमिनि और न्यायसूत्र-कर्ता गौतम के नाम महाभारत में पाये जाते हैं, परन्तु ये नाम सूत्रकर्ता की हैसियत से नहीं, साधारण ऋषियों

के तौर पर दिये गये हैं। जान पड़ता है, न्याय और मामासा महा भारत के पहले के हैं। यद्यपि न्याय शब्द का प्रत्यक्ष उपयोग नहीं किया गया है, तथापि उस विषय का उल्लेख हेतुवाद शब्द से किया गया है। नैयायिकों को हैतुक कहा गया है (अनु० अ० ३७, १२-१४)। महाभारत में वैशेषिक और कणाद का नाम नहीं है। उनका नाम सिर्फ एक बार हरिवंश में आया है। पूर्व मीमांसा का नाम शान्ति पर्व के १८वें अध्याय में दिया गया है। इसमें उन लोगों की प्रशंसा की गई है जिन्हें पूर्वशास्त्र की अच्छी जानकारी थी। महा-भारत-काल में पूर्वशास्त्र ही कर्मशास्त्र और उत्तरशास्त्र वेदान्त माना गया होगा। सांख्यशास्त्र के प्रवर्तक कपिल का नाम बारबार आया है और उनके शिष्यों में आसुरि और पञ्चशिख तथा असित देवल का भी नाम आया है। वेदों के निन्दक के तौर पर कपिल का वर्णन है। यह भी कि कपिल अहिंसावादी और यज्ञों के विरुद्ध था (शा० अ० २६९ ९)। बौद्ध मतवादियों में पञ्चशिख का नाम पाया जाता है। इसका काल बुद्ध के समय के लगभग माना जा सकता है। इससे यह बात पाई जाती है कि बुद्ध और पञ्चशिख के अनन्तर महाभारत हुआ है।

सच्चे नास्तिक लोकायत, बौद्ध और जैन हैं। महाभारत में नाम से इनका उल्लेख कहीं नहीं है। लोकायत मत के अगुआ चार्वाक का नाम कहीं नहीं देख पड़ता। युद्ध के अनन्तर युधिष्ठिर ने जब हस्तिनापुर में प्रवेश किया उस समय के वर्णन में प्रकट रूप से उसका धिक्कार करनेवाले चार्वाक नामक एक ब्राह्मण परिव्राट् का नाम पाया जाता है। इससे जान पड़ता है कि चार्वाक नाम निन्द्य था। लोकायन का नाम आदिपर्व के ७०वें अध्याय में है। यहाँ कहा गया है कि कण्व के आश्रम में लोकायत पन्थ के मुनियों के वाद विवाद की आवाज गूँज रही थी। इससे प्रकट है कि लोकायत अथवा चार्वाक मत बहुत प्राचीन है। आश्वमेधिकपर्व के ४९वें अध्याय (अनुगीता) में अनेक मत बतलाये गये हैं।

कहा गया है कि कुछ लोग इस जगत् को क्षणिक मानते हैं। इस वर्णन में बौद्ध मत का उल्लेख देख पड़ता है। किसी किसी स्थान में निर्वाण शब्द का प्रयोग किया गया है। यहाँ भी बौद्ध मत का ही बोध होता है। जैन मत का उल्लेख स्पष्ट है। आदिपर्व में नग्न क्षपणक का उल्लेख है। इसी प्रकार नग्न, दिगम्बर, पागलों के समान घूमनेवाले आदि का उल्लेख है।

कुछ लोगों की राय है कि गीता में बौद्धमत का खण्डन है। इन लोगों का कथन है कि गीता में आसुर स्वभाव का जो वर्णन है वह बौद्ध लोगों का है। परन्तु सच बात यह है कि उक्त वर्णन चार्वाकों का है। 'जगत् अनीश्वर है', यह मत बौद्धों का नहीं, चार्वाकों का है। बौद्ध लोग इसका विचार ही नहीं करते कि ईश्वर है या नहीं।

महाभारत में सनातनधर्म के तीन मत मतान्तरों का प्रत्यक्ष उल्लेख है। शाक्त और गाणेश मतों अथवा आगमों का उल्लेख नहीं है। शैव मत का उल्लेख पाशुपत ज्ञान के नाम से किया गया है, परन्तु इस मत के किसी ग्रन्थ का नाम नहीं है। वैष्णवों के मत का उल्लेख भागवत नाम से किया गया है। पाञ्चरात्र शब्द का उपयोग विष्णु अथवा श्रीकृष्ण के लिए किया जा सकता है। इसी से इस मत के लोगों को 'सात्वत' कहते हैं। सौर उपासना का भी उल्लेख है।

इस अन्त प्रमाण के आधार पर सिर्फ़ इतना ही कहा जा सकता है कि आश्वलायन के गृह्यसूत्र, बादरायण के वेदान्तसूत्र और पतञ्जलि के योगसूत्र के पहले महाभारत की रचना हुई है।

दूसरा अन्त प्रमाण महाभारत में पाये जानेवाले गद्य और छन्दों का है। इस पर पाश्चात्य ग्रन्थकारों ने बहुत विचार किया है।

महाभारत में अनेक स्थानों में गद्य पाया जाता है। विशेषत आदि, वन और शान्ति पर्व में वह अधिक है। इन गद्य भागों की रचना स्वयं सौति ने की होगी अथवा कहीं कहीं पहले ज़माने के किसी इतिहास आदि ग्रन्थ से कोई भाग ले लिया होगा। महाभारत का

गद्य भाग वेद के ब्राह्मण भाग और उपनिषद्-भाग में पाये जानेवाले गद्य से भिन्न है। ब्राह्मण भाग के गद्य में प्राचीन वैदिककालीन शब्द और प्रयोग बहुत हैं। परन्तु महाभारत के गद्य में प्राचीन शब्द अथवा प्रयोग नहीं हैं। स्पष्ट देख पड़ता है कि महाभारत के गद्य की रचना उस समय की है जब संस्कृत-भाषा का उपयोग साधारण लोगों का बातचीत में नहीं था अर्थात् वह ईसवी सन् के पहले २०० के लगभग का है।

महाभारत में मुख्यतः अनुष्टुप् श्लोक हैं और इनसे कुछ कम उपजाति वृत्त (त्रिष्टुप्) के श्लोक हैं। सौ में ६५ अनुष्टुप, ५ से कुछ कम त्रिष्टुप और ; अन्य वृत्तों के श्लोक हैं। इस ; में अक्षरवृत्तों में रथोद्धता से शार्दूलविक्रीडित तक के ११ वृत्तों के नमूने हैं। मात्रावृत्तों में पुष्पिताग्रा अपरवक्त्रा, मात्रासमका और आर्या, गीति और उपगाति वृत्त हैं।

अनुष्टुप् और त्रिष्टुप् वैदिक वृत्त हैं। यह अनुमान किया जाता है कि जिन जिन स्थानों में त्रिष्टुप् श्लोक पाये जाते हैं वे बहुत प्राचीन भाग हैं। त्रिष्टुप् के श्लोकों के आधार पर महाभारत का काल कालिदास आदि के पहले का और रामायण के भी पहले का निश्चित होता है, क्योंकि रामायण के त्रिष्टुप् श्लोक नियमबद्ध देख पड़ते हैं। महाभारत के त्रिष्टुप् की रचना उससे भिन्न देख पड़ती है। वैदिक त्रिष्टुप् का अनुकरण करने के कारण महाभारत का त्रिष्टुप् अनियत्रित है। इसी से जान पड़ता है कि उसका समय बहुत प्राचीन है।

श्लोकों की तुलना करके हाप्किन्स ने काल-सम्बन्धी यह अनुमान निकाला है कि महाभारत में तीन-चार तरह के श्लोक देख पड़ते हैं। पहला प्रकार—अनियत्रित उपनिषदों के श्लोकों के नमूने पर दूसरा प्रकार—महाभारत का प्राचीन भाग जो इससे कुछ कम अनियत्रित तीसरा प्रकार—भारत के प्रधान और जोरदार श्लोक चौथा प्रकार—नया बढ़ाया हुआ भाग जो रामायण के श्लोकों के समान है। हाप्किन्स ने एक और पाँचवाँ प्रकार भी बताया है जो महाभारत के अनन्तर का है। हाप्किन्स के मतानुसार भी छन्दों के

विचार से महाभारत का समय उपनिषद् काल से रामायण काल तक जा पहुँचता है।

तीसरे अन्तःप्रमाण के लिए बुद्ध के धर्ममत का प्रचार अथवा ग्रीक लोगों की चढाई अथवा उनके साथ व्यवहार होने की घटनाएँ हैं। यह देखना है कि महाभारत में इसका कहीं उल्लेख है या नहीं। उसमें बुद्ध का तो नाम तक नहीं है, परन्तु बौद्ध भिक्षुओं और बौद्ध मतों का अवश्य निर्देश है। जिन का भी नाम नहीं है, परन्तु 'क्षपणक' के नाम से जैनों का उल्लेख किया गया है। यवनों की युद्ध-कुशलता का वर्णन दो तीन स्थानों में है। यवनों का उल्लेख भी बार-बार किया गया है। अतएव यह बात निश्चित है कि महाभारत ईसवी सन् के पहले ३०० वर्ष के इस पार का होना चाहिए।

परन्तु पश्चिमी विद्वानों का कथन है कि महाभारत का काल और भी इधर का है। इस बात को सिद्ध करने के लिए हापकिन्स ने कुछ कारण भी बतलाये हैं। उनसे यह देख पडता है कि ईसवी सन् के पहले १५० के अनन्तर महाभारत तैयार हुआ। परन्तु हाप-किन्स ने आरम्भ में कहा है कि भारत की 'मूलकथा' का समय ईसवी सन् के पहले ७०० से लेकर १७०० तक उधर हो सकता है। परन्तु कुरुभारतों की भिन्न भिन्न कथाओं के एकत्र होने से जो 'भारत' बना उसका समय ईसवी सन् के पहले ४०० वर्ष है। पाण्डवों की कथा, पुराणों की कथा और श्रीकृष्ण के देवत्व की कथा के एकत्र होने से जो 'महाभारत' बना उसका समय ईसवी सन् के पहले ४०० २०० वर्ष है। इससे भी आगे जो वृद्धि हुई है वह श्रीकृष्ण के ईश्वरत्व, नीति और धर्म की शिक्षा देनेवाले बडे बड़े भागों को, पुराणों में वर्णित नई और पुरानी कथाओं को तथा पराक्रमों के अतिशयोक्ति के वर्णनों को शामिल कर देने से हुई है और इस वृद्धि का समय ईसवी सन् के पहले २०० से सन् २०० ईसवी तक है। हापकिन्स का यह मत देख पडता है कि 'भारत' का समय ईसवी सन् के पहले ४०० और

'महाभारत' का समय सन् २०० ४०० ईसवी है। इस मत का मुख्य आधार पूर्वोक्त गुप्त शिलालेख है। इसमें सन् ४४५ ईसवी के लेख में एक लाख श्लोकों के भारत ग्रन्थ का वर्णन है, इसलिए पश्चिमी पण्डित कहते हैं कि सौतिकृत एक लाख श्लोकों का भारत सन् ४०० ईसवी तक का बना है। परन्तु आश्चर्य है कि हापकिन्स के ग्रन्थ में डायोन क्राय सोस्टोम् नामक ग्रीक वक्ता के उस लेख का कुछ ना पता नहीं है जिसकी रचना सन् ५० ईसवी से सन् ९० ईसवी तक हुई है और जिसमें हिन्दुस्तान के एक लाख श्लोकवाले इलियड का उल्लेख किया गया है। इसको एक लाख श्लोक के ग्रन्थ की बात मलाबार में मालूम हुई थी, अर्थात् उस समय तक महाभारत सारे हिन्दुस्तान में प्रचलित हो गया था। इस प्रमाण से सिद्ध है कि महाभारत के समय को ईसवी सन् के इस ओर घसीट लाना असम्भव है।

तीसरा प्रकरण

क्या भारती युद्ध काल्पनिक है?

कुछ लोगों का कथन है कि भारती युद्ध हुआ ही नहीं। यह तो एक काल्पनिक कथा है। वेबर का कथन है—वैदिक साहित्य में भारती युद्ध अथवा भारती योद्धाओं का कुछ भी उल्लेख नहीं है। ब्राह्मणों में 'अर्जुन' इन्द्र का नाम है। अर्जुन का पौत्र परीक्षित था और उसके पुत्र जनमेजय का उल्लेख 'पारीक्षित जनमेजय' कह कर शतपथ ब्राह्मण में किया गया है। भारती युद्ध ब्राह्मण काल में या उसके पहले होना चाहिए। यदि ऐसा ही हुआ हो तो यह आश्चर्य की बात है कि जिस युद्ध में हजारों और लाखों वीर मारे गये और अर्जुन तथा श्रीकृष्ण ने बहुत पराक्रम दिखाया उस युद्ध का कहीं उल्लेख ही न हो। अर्जुन के पौत्र का तो उल्लेख है, पर स्वयं

र्जुन का उल्लेख नहीं है। इससे यही प्रकट होता है कि भारती युद्ध काल्पनिक है और भारत में वर्णित व्यक्ति कवि-कल्पना द्वारा निर्मित सद्गुणों की मूर्तियाँ हैं।

किसी व्यक्ति या घटना के होने अथवा न होने के सम्बन्ध में साधारण रीति से यह प्रमाण काफ़ी समझा जाता है कि उसका उल्लेख ऐसे ग्रन्थ में हो जिसे लोग ऐतिहासिक मानते हों, फिर चाहे उस इतिहास में उसकी कथा दन्तकथा के तौर पर ही क्यों न दी गई हो। इसी न्याय के अनुसार जब भारत में ही यह स्पष्ट कहा है कि यह इतिहास ग्रन्थ है तब इस बात के मानने में कोई हर्ज नहीं कि पाण्डव हो गये हैं और भारती युद्ध भी हो गया है। वेबर ने उल्लेखाभाव का जो कारण बतलाया है वह काफ़ी नहीं है। वैदिक साहित्य में भारती युद्ध का उल्लेख नहीं है, तब इस बात को मान लेने की स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है कि भारती युद्ध नहीं हुआ है। परन्तु इस बात का विचार किया जाना चाहिए कि उल्लेख की आवश्यकता थी या नहीं। इस दृष्टि से यह नहीं कहा जा सकता कि वैदिक साहित्य के समय जो अनेक घटनाएँ हुईं उन सबका उल्लेख उस साहित्य में किया ही जाना चाहिए था; ब्राह्मणादि ग्रन्थ इतिहास के ग्रन्थ नहीं हैं, वे धार्मिक ग्रन्थ हैं। यदि भारती युद्ध अथवा भारती योद्धाओं के नाम शतपथ ब्राह्मण अथवा अन्य वैदिक साहित्य मे नहीं हैं तो इस उल्लेखाभाव के आधार पर यह अनुमान करना भारी भूल है कि उक्त घटना हुई ही नहीं।

एक स्थान में रमेशचन्द्र दत्त ने माना है कि भारती युद्ध का होना तो सम्भव है, परन्तु पाण्डवों का होना असम्भव है; क्योंकि पाण्डवों की कल्पना केवल सद्गुणों के उत्कर्ष की कल्पना मात्र है। यह नहीं कहा जा सकता कि महाभारत में पाण्डवों का जो इतिहास है वह केवल सद्गुणों के ही वर्णन से भरा हुआ है। उदाहरणार्थ पाँच भाइयों ने मिलकर एक स्त्री के साथ विवाह किया। वैदिक समय में आर्यों में ऐसा रवाज़ न था। काल्पनिक पाण्डवों ने ऐसा विवाह कैसे

किया ? भीम ने रणभूमि में दुःशासन का लहू पिया था। यह शास्त्र-विरुद्ध भयानक कार्य उसने क्यों किया ? सारांश, पाण्डव कुछ सद्गुणों के अवतार नहीं बनाये गये हैं, बल्कि वे साधारण मनुष्यों के समान ही चित्रित हैं। इस प्रकार यह सिद्ध है कि भारती युद्ध और भारती योद्धा काल्पनिक नहीं हैं।

ब्राह्मण ग्रन्थों में भारती युद्ध के उल्लेख का न पाया जाना प्रमाण हो तो आश्चर्यकारक अवश्य है। परन्तु यह भी नहीं कहा जा सकता, क्योंकि सौति ने *महाभारत को जो बृहत् स्वरूप दे दिया है* वह उस समय नहीं था। उस समय युधिष्ठिर का अश्वमेध भी बहुत प्रसिद्ध न था। उसके पहले कितने ही राजाओं ने अनेक अश्वमेध किये थे। *श्रीकृष्ण की भक्ति का भी बहुत कम प्रचार हुआ था।* परीक्षित के पुत्र जनमेजय और उनके तीन भाइयों ने भिन्न भिन्न प्रकार के चार अश्वमेध किये थे, इसलिए उनका नाम उस अश्वमेध *वर्णन के प्रसंग में शतपथ ब्राह्मण में है। तब हमें आश्चर्य करने* की कोई आवश्यकता नहीं है।

वेबर का मत है कि उस युद्ध में जनमेजय प्रधान था और उसका नाश उसी युद्ध में हुआ है, क्योंकि बृहदारण्यक में किसी ऋषि ने याज्ञवल्क्य से पूछा है कि पारिक्षितों का क्या हुआ। परन्तु इस प्रश्न के आधार पर यह अनुमान नहीं किया जा सकता कि पारिक्षितों का अन्त किसी भयानक रीति से हुआ। वहाँ इस प्रश्न का उत्तर दिया गया है कि अश्वमेध करनेवाला वही गति पाता है जो अध्यात्म विद्या से प्राप्त होती है। वेबर का यह मत बिलकुल ग़लत है।

एक जर्मन पण्डित कहता है कि *मूल भारत संहिता* एक छोटी सी कथा थी, वह कथा बौद्धधर्माय थी और उसका नायक कर्ण था, आगे जब ब्राह्मण धर्म का प्रबलता हुई तब ब्राह्मणों ने कृष्ण परमात्मा के भक्त, अर्जुन और उसके *भाइयों को प्रधानता दी* और इस प्रकार श्रीकृष्ण अथवा विष्णु की महिमा बढ़ाई गई। टालबाइस ह्वीलर

का कथन है कि पाण्डवों के युद्ध के समय श्रीकृष्ण नहीं थे, उनका नाम पीछे से कथा में शामिल कर दिया गया है। अन्य कुछ लोग कहते हैं कि इस युद्ध में पाण्डवों की विजय न होकर दुर्योधन की हुई। स्मरण रहे कि ये सब कल्पनाएँ युद्ध के न होने के विषय में नहीं हैं।

परन्तु श्रीकृष्ण और पाण्डवों का पारस्परिक सम्बन्ध किसी प्रकार अलग नहीं किया जा सक्ता। मेगास्थिनीज़ ने हिन्दुस्तान के प्रसिद्ध देवता का वर्णन हिरक्लीज के नाम से किया है। वही श्रीकृष्ण हैं। उसने लिखा है—हिरक्लीज की पूजा शौरसेनी लोग करते हैं और इन लोगों का मिथोरा नाम का मुख्य शहर है। उसने यह भी कहा है कि हिरक्लीज के पाण्डिया नाम की एक कन्या थी। परन्तु यह कथन भ्रम से किया गया है। इससे यह प्रकट होता है कि श्रीकृष्ण और पाण्डवों की कथा मेगास्थिनीज़ के समय में प्रसिद्ध थी। इससे भी पहले का प्रमाण पाणिनि के एक सूत्र में पाया जाता है। इस सूत्र से प्रकट होता है कि उस समय लोग वासुदेव और अर्जुन की भक्ति किया करते थे। श्रीकृष्ण बहुत प्राचीन हैं। उनका उल्लेख छान्दोग्य उपनिषद् मे है। यह प्रकट है कि ये दोनों व्यक्ति ब्राह्मण-कालीन हैं।

पाण्डवों की कल्पित अथवा प्रचलित कथा के पीछे से शामिल कर देने का कोई प्रयोजन नहीं देख पड़ता है। जिस समय महाभारत की रचना की गई अर्थात् ईसवी सन् के पहले ३०० के अनन्तर, पाण्डवों का कोई राज्य प्रसिद्ध नहीं था। ऐसी दशा में उसमें अप्रसिद्ध पाण्डवों के शामिल कर देने की बुद्धि किसी राष्ट्रीय कवि को नहीं होगी। इसके सिवा यह भी है कि यदि प्राचीन भारत और कुरु लोगों की कथा होती तो जो कथा सर्वसाधारण मे आदरणीय हो चुकी थी, उसी के क़ायम रखने में कौन आपत्ति थी ? अतएव यह कल्पना ठीक नहीं जँचती है कि पाण्डवों की कथा पीछे से शामिल की गई है।

यह कथन भी बेसिर पैर का है कि मूल युद्ध भारत और कुरु लोगों में हुआ था। यह नहीं देख पडता कि भारत और कुरु ये दो

नाम भिन्न भिन्न लोगों के हैं। भरत के वंशजों को भारत कहते हैं। इस दृष्टि से भारत शब्द का उपयोग कौरवों के लिए भी किया जाता है। 'महाभारत' अथवा 'भारत' नाम युद्ध का क्यों रक्खा गया, इसका कारण यह है कि कौरव और पाण्डव दोनों भारत वंश के थे, इसलिए दोनों को लक्ष्य कर भारत नाम रक्खा गया है। पाण्डवों के प्रधान सहायक पाञ्चाल भी भारत वंश के थे। मूल ग्रन्थ में कुरु भारतों के युद्ध के होने की यह कल्पना निराधार है।

इस प्रकार निश्चय हो गया कि पाण्डव काल्पनिक नहीं हैं, उनकी कथा पीछे से शामिल नहीं की गई है, और भारती युद्ध भी काल्पनिक नहीं है।

चौथा प्रकरण

भारती युद्ध का समय

यह युद्ध कब हुआ इस पर भिन्न भिन्न मत प्रचलित हैं। मतों का, समय के क्रम के अनुसार, दिग्दर्शन किया जाता है।

(१) मोडक का कथन है कि भारतीय युद्धकालीन ग्रहों की स्थिति महाभारत में भिन्न भिन्न दो नक्षत्रों पर बतलाई गई है। एक ही समय में एक ग्रह दो नक्षत्रों पर नहीं रह सकता, इसलिए एक नक्षत्र को सायन और दूसरे को निरयण मानना चाहिए। इससे मालूम होता है कि उस समय वसन्त सम्पात पुनर्वसु नक्षत्र में था। इस हिसाब से गणित करके देखने पर भारती युद्ध का समय ईसवी सन् के पूर्व क़रीब ५००० वर्ष आता है। (२) महाभारत से मालूम होता है कि भारती युद्ध कलियुग के आरम्भ में हुआ। जब भीम ने दुर्योधन को लात से मारा था तब श्रीकृष्ण ने कहा था कि यह समझ लो कि कलियुग का प्रारम्भ हो गया (शल्यपर्व)। इससे सिद्ध होता है कि युद्ध के समाप्त होने पर शीघ्र ही चैत्र में कलियुग का प्रारम्भ हुआ।

ज्योतिषियों के मतानुसार कलियुग ईसवी सन् के पहले ३१०१ वर्ष मे लगा। इससे भारती युद्ध का समय ईसवी सन् के पहले ३१०१ वर्ष निश्चित होता है। (३) प्राचीन ज्योतिषी वराहमिहिर और काश्मीर के पण्डित कल्हण मानते हैं कि कलियुग के शुरू हो जाने पर ६५३ वर्षों के अनन्तर ईसवी सन् के पूर्व २४४८ वें वर्ष में भारती युद्ध हुआ। (४) रमेशचन्द्र दत्त आदि प्राच्य विद्वान् और कुछ पाश्चात्य पण्डित कहते हैं कि भारती युद्ध ईसवी सन् के १४०० वर्ष पूर्व हुआ। पुराणों में पाण्डवों के समकालीन वृद्धद्रथ-वंशीय मगधराजा से लेकर नद पर्यन्त के दिये हुए समय के आधार पर यह समय निश्चित होता है। (५) मदरासी विद्वान् विलण्डी अय्यर ने सन् ईसवी पूर्व ११९४ वें वर्ष के १४ अक्टूबर को युद्ध का निश्चयात्मक समय माना है।

भारती युद्ध के उपर्युक्त भिन्न भिन्न समयों के सम्बन्ध में हमे विवेचन करना है। पहले हम ज्योतिषियों के माने हुए समय पर विचार करेंगे।

कलियुगारम्भ में भारती युद्ध के होने की कल्पना सौति के समय में अर्थात् ईसवी सन् के लगभग ३०० वर्ष पहले प्रचलित थी। इस प्रकार भारती युद्ध के समय में, कलियुग के आरम्भ में और श्रीकृष्ण के समय में एकता पाई जाती है, अर्थात् कलियुग का आरम्भकाल और श्रीकृष्ण का समय बता देने से भारती युद्ध का समय ज्ञात हो जायगा।

मेगास्थिनीज़ ने लिखा है कि सेंड्राकोटस और डायानिसास के बीच में १५३ पीढ़ियाँ और ६०४२ वर्ष हुए। हिराक्लीज़ डायनिसास से १५ पीढ़ियों के बाद हुआ। मेगास्थिनीज का सेंड्राकोटस ऐतिहासिक चन्द्रगुप्त मौर्य है और हिराक्लीज़ श्रीकृष्ण हैं। डायानिसास से हिराक्लीज़ तक १५ पीढ़ियाँ हुईं। उनको घटा देने पर हिराक्लीज़ से चन्द्रगुप्त तक १५३ – १५ = १३८ पीढ़ियाँ हुईं। ऐतिहासिक सिद्धान्त है कि प्रत्येक राजा की पीढ़ी के लिए २० वर्ष का औसत पड़ता है। इस के अनुसार श्रीकृष्ण से चन्द्रगुप्त तक लगभग १३० × २० = २७६० वर्ष हुए। चन्द्रगुप्त का समय ई० पू० ३१२ वर्ष था। इससे श्रीकृष्ण

का समय ई० पू० ३०३२ वर्ष निश्चित होता है। यह कलियुग के आरम्भ का निकटवर्ती समय भी है।

छान्दोग्य उपनिषद् में श्रीकृष्ण को देवकीपुत्र कहा गया है। गीता में श्रीकृष्ण ने सामवेद के साथ अपना तादात्म्य प्रकट किया है। इससे यह पाया जाता है कि सामवेद के छान्दोग्य उपनिषद् में श्रीकृष्ण का उल्लेख स्वाभाविक है। श्रीकृष्ण का समय छान्दोग्य से बहुत पहले होगा। उपनिषदों के समय को वेदाङ्गों के पहले मानना चाहिए। ज्योतिष का समय निश्चय के साथ बतलाया जा सकता है। शङ्कर बालकृष्ण दीक्षित ने वेदाङ्ग ज्योतिष को लगभग ई० पू० १४१० वर्ष माना है। अर्थात् छान्दोग्य उपनिषद् का समय इसके पूर्व और श्रीकृष्ण का समय उसके भी पूर्व मानना चाहिए। इस प्रमाण से श्रीकृष्ण का उपर्युक्त समय ठीक प्रतीत होता है और भारती युद्ध उसी समय हुआ है। भारतीय ज्योतिषियों के मतानुसार कलियुग का आरम्भ ई० पू० ३१०१ वर्ष में हुआ। आजकल के पञ्चांगों में यही समय मिलता है और यह आर्यभट्ट, ब्रह्मगुप्त आदि ज्योतिषियों के समय से लिखा जाता है। उस समय में यहाँ यह बात लिखकर रख ली जाती थी कि अमुक देश में अमुक राजा अमुक वर्ष तक राज्य करते थे। युधिष्ठिर के बाद की ऐसी वंशावली अवश्य प्रचलित रही होगी। ऐसी वंशावली के आधार पर आर्य ज्योतिषकारों ने यह निश्चित किया कि युधिष्ठिर को इतने वर्ष हो चुके। उनके समय के पहले ३०० वर्ष से महाभारत बतला रहा था कि कलियुग का आरम्भ, भारती युद्ध और युधिष्ठिर का राज्यारोहण एक ही समय में हुआ। इस प्रकार पहले पहल नूतन सिद्धान्तकार आर्यभट्ट ने कलियुग के आरम्भ का समय ई० पू० ३१०१ वर्ष बतलाया। नहीं कहा जा सकता कि कलियुग का आरम्भकाल पीछे से गणित करके स्थिर किया गया।

वराहमिहिर का कथन है कि भारती युद्ध कलियुग के आरम्भ में नहीं हुआ। उन्होंने गर्ग के मत के आधार पर लिखा है—शक

संवत् में २४२६ के मिलाने पर युधिष्ठिर का समय निकलता है। हमने भारती युद्ध का समय ई० पू० ३१०१ वर्ष ठहराया है। इसमें और वराहमिहिर के समय में ६५३ वर्षों का अन्तर है। राजतरङ्गिणीकार कल्हण ने इसी समय के मानकर लिखा है—इस बात से विमोहित होकर कि पाण्डव कलियुग के आरम्भ में हुए, कुछ काश्मीर के इतिहासकार काश्मीर के पूर्वकाल के राजाओं की ग़लत सूची देते हैं, परन्तु कलियुग के ६५३ वें वर्ष में पाण्डव थे, इस काल के अनुसार मैंने राजाओं की सूची को सुधार दिया है। इससे मालूम होता है कि कल्हण के समय में यह मत प्रचलित था कि पाण्डव कलियुग के आरम्भ में हुए। परन्तु इसका महाभारत के वचनों से स्पष्ट विरोध है। ऐसी दशा में यह कथन गलत है कि कलियुग के ६५३ वर्षों के बाद युद्ध हुआ। महाभारत के अनुसार चैत्र शुक्ल प्रतिपदा के कलियुग लगा और उसके पहले के मार्गशीर्ष महीने में भारती युद्ध हुआ।

महाभारत में गर्ग का नाम आया है। इससे गर्ग के द्वारा यह नियम बना दिया जाना सम्भव नहीं कि शक संवत् में अमुक वर्ष मिला देने से युधिष्ठिर का समय निकल आता है। गर्ग संहिता में इसका कुछ भी वर्णन नहीं है। २४२६ संख्या गर्ग ने ही दी है, यह मानकर श्रीयुत अय्यर ने शककाल का अर्थ शाक्य मुनि का काल समझ लेने की सिफारिश की है। बुद्ध के मृत्युकाल से बुद्ध काल गणना का आरम्भ मान लेने से तो यह समय हमारे मत के अनुकूल हो जाता है। बौद्धों में आजकल प्रचलित निर्वाण-शक को ई० पू० ५४३ वर्ष का मान लेने से और उसे २५२६ में मिला देने से श्रीकृष्ण के और कलि युग के आरम्भ के समय के निकट आ जाता है। परन्तु शक-काल शब्द का अर्थ शाक्य मुनि अथवा बुद्ध का समय कभी नहीं हो सकता।

गर्ग का उक्त वचन किसी तत्कालीन राजा के लिए होगा। उसने लिखा होगा कि युधिष्ठिर को हुए अमुक राजा तक २५६६ अथवा २५२६ वर्ष हुए। वराहमिहिर ने उस नाम का उपयोग

मगध का राजा जरासन्ध पाण्डव-कालीन था। उसके बाप हद्रथ ने इस वंश की स्थापना की थी। इसलिए उसके वंश का ाम 'बार्हद्रथ वंश' पड़ा। विष्णुपुराण के चौथे अंश के २३वें अध्याय । कहा गया है कि ये बार्हद्रथवंशी राजा मगध में एक हज़ार वर्ष क राज्य करेंगे। इसके बाद कहा गया है कि 'प्रद्योत वंश' १३८ र्ष तक राज्य करेगा। इसके बाद 'शिशुनाग वंश' ३६२ वर्ष राज्य रेगा। अर्थात् महापद्मनंद और उसके आठ पुत्रों के पहले सहदेव के समय से १०००+१३८+३६२=१५०० वर्ष होते हैं। तो फिर २४वें अध्याय में जो यह कहा गया है कि भारती युद्ध से १०१५ वर्ष होते हैं उसका क्या अर्थ है? इसलिए विष्णुपुराण के २४ वें अध्याय का उक्त वचन बिलकुल मानने योग्य नहीं है।

पुराणकारों को प्रद्योत वंश से मगध का इतिहास विश्वसनीय रूप से मिल गया था। उन्होंने प्रद्योत वंश के पहले एक बार्हद्रथ वंश का उल्लेख किया है और उसकी वर्ष-संख्या १००० रख दी है। इससे उनकी और मेगास्थिनीज़ की बातों में बहुत अन्तर है। प्रद्योत वंश के उत्तरकालीन वंशों से सम्बद्ध बातें बौद्ध ग्रन्थों में भी मिलती हैं। परन्तु उसके पहले की बातें विश्वसनीय नहीं हैं। पुराणकारों के समय में वे नष्ट हो गई होंगी। पहले के राजाओं की वंशावली चन्द्रगुप्त के दरबार में रहनेवाले मेगास्थिनीज़ के समय थी। परन्तु सन् ४०० ईसवी के लगभग जब पुराणकारों ने पुराणों की पुनः रचना की, इन वंशावलियों के सम्बन्ध की बातें नष्ट हो गई थीं।

मेगास्थिनीज़ की लिखी हुई बातें अधिक विश्वसनीय हैं। उसका ग्रन्थ नष्ट हो गया है। दो तीन इतिहासलेखकों ने उसके ग्रन्थ से जो अवतरण लिये हैं, वे यहाँ उद्धृत हैं—

भारत के लोग डायानिसास (बकस) के समय से सेंड्राकोटस (चन्द्रगुप्त) तक १५३ राजा और उनका समय ६०४२ वर्ष मानते हैं; *परन्तु इस समय में तीन बार लोकसत्तात्मक राज्य स्थापित हुआ "दूसरी

बार ३०० वर्ष तक और एक बार १२० वर्ष तक। भारत के लोग कहते हैं कि *डायानिसास हिराक्लीज से १५ पीढ़ी पहले हुआ था।* (भरायन)

इस अवतरण के हिराक्लीज श्रीकृष्ण हैं। परन्तु डायानिसास का कुछ निश्चय नहीं। यदि उसे दक्ष-पुत्र मनु मान लें तो उसके समय से महाभारत और हरिवंश में बतलाये हुए श्रीकृष्ण तक १५ पीढ़ियाँ होती हैं (आदि० अ० ७५)। मेगास्थिनीज की असली बातें महाभारत कालीन पण्डितों से मालूम हुई होंगी। इससे उसकी बतलाई १५३ पीढ़ियाँ पुराणों की अन्तिम आवृत्ति में दी हुई पीढ़ियों से अधिक विश्वसनीय हैं।

मेगास्थिनीज ने पीढ़ियों की जो संख्या दी है, उसके हिसाब से उनके समय की वर्ष संख्या बहुत अधिक निकलती है। राजाओं की प्रत्येक पीढ़ी के लिए २० वर्ष का औसत होने पर १५३ पीढ़ियों के लिए ६०४२ वर्ष कैसे हुए? प्रत्येक देश में मानवीय राजाओं के होने के पहले थोड़े बहुत देवांशवाले राजा मान लिये जाते हैं। ऐसे राजाओं की वर्ष संख्या भी अधिक हुआ करती है। हमारे यहाँ श्रीकृष्ण का ईश्वरीय अवतार हो जाने के बाद कलियुग का आरम्भ हुआ। हिराक्लीज (श्रीकृष्ण) तक की १५ पीढ़ियों को घटाकर शेष १३८ पीढ़ियों को मानवीय राजाओं की समझना चाहिए और इन राजाओं के राज्यवर्षों का समय २० वर्ष के हिसाब से २७६० वर्ष ठहरता है। ६०४२ वर्ष में से इसको घटाने पर ३२८२ वर्ष बच जाते हैं। इनको १५ पीढ़ियों का समय मान लेने पर प्रत्येक पीढ़ी के लिए २०२ वर्ष पड़ते हैं। अन्य देशों के इतिहास के मुक़ाबले यह वर्ष संख्या बड़ी नहीं है। यहूदियों की वंशावली में आदम से नोआ तक ११ पुरुषों के २२६२ वर्ष बतलाये गये हैं। अतएव मेगास्थिनीज की लिखी बात सम्भव है। १५३ पीढ़ियों का उल्लेख उसने तत्कालीन लेखों के आधार पर ही किया है।

वैदिक साहित्य का प्रमाण—ऋग्वेद में भारतीय युद्ध का कहीं उल्लेख नहीं है। परन्तु उसमें भारतीय युद्ध के योद्धाओं के पूर्वजों का एक उल्लेख है। भीष्म के पिता शन्तनु का एक भाई देवापि ?

ा। ऋग्वेद के 'वृहद्देवता' ग्रन्थ में लिखा है—आष्टिर्षेण देवापि और कौरव्य शन्तनु दोनों भाई राजपुत्र थे। उनका जन्म कौरव वंश में हुआ था। एक बार शन्तनु के राज्य में अनावृष्टि हो गई थी तो 'पर्जन्य' की स्तुति करके देवापि ने वर्षा करवाई थी। इस अवसर पर उसका बनाया सूक्त ऋग्वेद के दसवें मण्डल में है।

महाभारत मे पाञ्चालों को बार बार 'सोमका' कहा है। ऋग्वेद में 'सोमकः सहदेव्य.' कहकर सहदेव-पुत्र सोमक का उल्लेख एक सूक्त में किया गया है। ऐतरेय ब्राह्मण में भी सहदेव-पुत्र सोमक के एक राजसूय यज्ञ करने का वर्णन है। यह सोमक द्रुपद का पूर्वज था। यजुर्वेद में कुरु-पाञ्चालों का एकत्र उल्लेख है। काठक ब्राह्मण में विचित्रवीर्य के पुत्र धृतराष्ट्र का और शुक्ल यजुर्वेद के शतपथ ब्राह्मण में परीक्षित के पुत्र जनमेजय का उल्लेख है। इससे सिद्ध हुआ कि भारतीय युद्ध ऋग्वेद के रचना काल के अनन्तर १०० वर्षों में और यजुर्वेद तथा शतपथ ब्राह्मण के कुछ वर्ष पहले हुआ।

शतपथ ब्राह्मण का समय स्थिर करने के लिए एक प्रमाण मिल गया है। शंकर बालकृष्ण दीक्षित कहते हैं कि शतपथ के कम से कम उस भाग का समय, जिसमें नीचे लिखा वाक्य है, लगभग ३००० वर्ष ई० पू० है। वह वाक्य है—कृत्तिका नक्षत्र पर अग्नि का आधान करना चाहिए। यह निश्चित बात है कि कृत्तिका पूर्व दिशा से च्युत नहीं होती, शेष नक्षत्र च्युत हो जाते हैं। इस वाक्य से प्रकट होता है कि उस समय कृत्तिका ठीक पूर्व में उदय होती थी। ज्योतिष शास्त्र के अनुसार इसका यह अर्थ है कि जिस समय यह वाक्य लिखा गया उस समय कृत्तिका ठीक विषुववृत्त पर थी। गणित से वह काल २९९० वर्ष ई० पू० आता है। इसे स्थूल रीति से ३००० वर्ष पूर्व माना जा सकता है। लगभग २९९० वर्ष ई० पू० में शतपथ का उक्त वाक्य लिखा गया होगा। अर्थात् ऋग्वेद का अन्तिम काल सन् ईसवी के ३२०० वर्ष पूर्व

मानना चाहिए। भारतीय युद्ध ऋग्वेद के अनन्तर १०० वर्षों में हुआ अतएव ३१०१ वर्ष ई० पू० भारतीय युद्ध का समय सिद्ध होता है।

महाभारत में कथा है कि जरासन्ध एक यज्ञ करके क्षत्रियों की बलि (पुरुषमेध) देनेवाला था। शतपथ ब्राह्मण से विदित होता है कि भारतवर्ष में किसी समय उसका प्रचार था। उक्त घटना से प्रकट होता है कि भारतीय युद्ध शतपथ ब्राह्मण से पूर्व हुआ होगा।

चान्द्रवर्ष गणना—ऋग्वेद के समय स्थूलमान से ३० दिन का महीना और १२ महीने का वर्ष माना जाता रहा होगा। ऋग्वेद में ऐसे चक्र का कई स्थानों में वर्णन है, जिसमें १२ आरे और ३६० कीलें कही गई हैं। बारह चान्द्रमास के ३६० दिनों में ६ दिन कम होते हैं और ऋतुचक्र ५¼ दिन अधिक होता है। यह कठिनाई ऋग्वेद के समय उपस्थित हुई होगी, परन्तु यह ज्ञात नहीं होता कि उसकी क्या व्यवस्था की गई थी। तैत्तिरीय संहिता से मालूम पड़ता है कि उस समय सावन और चान्द्र महीने तथा वर्ष दोनों प्रचलित थ। शतपथ ब्राह्मण में कहा गया है कि ३० चान्द्र वर्षों के बीतने पर वर्ष सब ऋतुचक्रों में घूम जाता है। मालूम होता है कि अधिक मास रखने की प्रथा न थी।

परन्तु वेदाङ्ग ज्योतिष में चान्द्रवर्ष का उल्लेख न कर कहा है कि ३० महीनों में अधिक मास होना चाहिए। वेदकाल में भी ऐसा कोई नियम रहा होगा। पाँच वर्ष में एकदम दो महीने अधिक रख देने की प्रथा भारती युद्ध के समय अर्थात् तैत्तिरीयसंहिता और ब्राह्मण ग्रन्थ के समय अवश्य रही होगी। तैत्तिरीय ब्राह्मण में पाँच वर्षों के भिन्न भिन्न नाम पाये जाते हैं। ऋग्वेद संहिता में भी दो नाम हैं। अर्थात् पाँच वर्ष का युग वेदाङ्ग ज्योतिष के पहले का है। परन्तु उक्त व्यवस्था से जब ऋतुएँ न्यूनाधिक होने लगी होंगी तब कुछ वर्षों के बाद एक क्षयमास रखने की प्रथा चली होगी। वाजसनेयि-संहिता में बारह महीनों के बारह नामों के सिवा तीन नाम और हैं। इन्हीं

दो अधिक मासों के नाम हैं और एक क्षयमास का है। उस समय यह नियम रहा होगा कि पाँच वर्ष के बाद दो महीने जोड़े जायँ और उन्हीं दो के ये नाम होंगे। यदि अधिक महीने जोड़े न जायँ तो यह नियम भी नहीं रह सकता कि प्रत्येक महीने की पूर्णिमा अमुक नक्षत्र पर ही रहे। अर्थात् चैत्र, वैशाख आदि नाम भी नहीं हो सकते, क्योंकि ये नाम उन महीनों की पूर्णिमा पर रहनेवाले नक्षत्रों पर ही रक्खे गये हैं। संहिता और ब्राह्मण ग्रन्थों में चैत्रादि महीनों के नाम नहीं हैं। पहले दो प्रकार के नाम थे। मधु माधव की तरह अरुण-अरुणजा आदि दूसरे नाम भी थे। ये नाम तैत्तिरेय ब्राह्मण में आये हैं। मधु आदि ऋतुवाचक नाम हैं। पर चान्द्र वर्ष ऋतुओं के अनुकूल नहीं है, अतएव दूसरे नाम चान्द्र वर्ष के महीनों के होंगे। सौर वर्ष का चलन होने पर चैत्र आदि नामों का प्रचार हुआ। चान्द्र वर्ष का चलन न रह जाने पर चान्द्र मासों के नाम भी लुप्त हो गये। दीक्षित ने बतलाया है कि चैत्रादि नामों का प्रचार लगभग २००० वर्ष ई० पू० के समय हुआ था। अर्थात् भारती युद्ध चान्द्र वर्ष के प्रचलित रहते समय हुआ, अतएव उसका समय २००० वर्ष ई० पू० से पहले होना चाहिए।

तो पाण्डवों ने वनवास और अज्ञातवास का समय चान्द्र वर्ष से पूरा किया या नहीं? महाभारत में इसका उल्लेख नहीं है कि पाण्डव वनवास को कब गये। द्यूत खेलने के महीने, मिति या ऋतु का भी उल्लेख नहीं है विराट पर्व के ३१वें अध्याय में कहा गया है कि सुशर्मा कृष्णपक्ष की सप्तमी को गोग्रहण के लिए दक्षिण गया और कौरव कृष्णपक्ष की अष्टमी को गोग्रहण के लिए उत्तर को गये। परन्तु यहाँ महीने का उल्लेख नहीं है। हम बतला चुके हैं कि चैत्रादि महीनों के नाम भारती युद्ध के बाद प्रचलित हुए। जो हो, कृष्ण-पक्ष की यह सप्तमी ग्रीष्म ऋतु की मालूम पड़ती है, क्योंकि उस समय ग्रीष्म ऋतु होने का वर्णन है (विराट अ० ४७)। यह अष्टमी सौर

ज्येष्ठ कृष्ण पक्ष की होनी चाहिए। यह नहीं कहा जा सकता कि ज्येष्ठ वदी अष्टमी के वनवास के पूरे तेरह वर्ष नहीं हो चुके थे।

उस तेरहवें वर्ष के अन्त में सुशर्मा ने विराट राजा की गौओं का हरण किया (*विराटपर्व ३१वाँ अध्याय*)। *यहाँ स्पष्ट कहा गया* है कि वदी सतमी के तेरह वर्ष पूरे हो गये थे। अष्टमी के अर्जुन प्रकट हुआ था सही, परन्तु नियत समय के दो दिन पहले नहीं। सौर वर्ष के मान से दुर्योधन समझता था कि आश्विन वदी अष्टमी के अथवा उसके लगभग पूरा हुआ था और आश्विन के पहले ही जेठ वदी अष्टमी के अर्जुन पहचान लिया गया, अर्थात् वह नियत समय के चार महीने पहले प्रकट हो गया, इसलिए पाण्डवों के फिर वनवास भोगना चाहिए। उसने कहा—अज्ञातवास का तेरहवाँ वर्ष अभी नहीं बीता है। राज्य-लोभ की अधिकता से उसे इस बात का स्मरण न रहा होगा। अथवा कालगणना सम्बन्धी हमारी धारणा ही भ्रमपूर्ण होगा। ठीक बात भीष्म बतला दें। पाँच वर्ष में स्थूल मान से दो महीने अधिक जोड़ देने के नियम से तेरह वर्ष में दस वर्ष के चार महीने अधिक तो हो ही चुके थे, परन्तु आगे १ महीना तथा १२ रात्रियाँ और भी बढ़ गईं। भीष्म ने यह निर्णय किया कि चान्द्र मास से पाण्डवों के तेरह वर्ष पूरे हो चुके। हमने भारतीय युद्ध का जो *समय वैदिककालीन शतपथ* ब्राह्मण के पहले बतलाया है, उसका इस बात से समर्थन होता है।

ग्रहस्थिति के आधार पर युद्ध का समय—*जब श्रीकृष्ण दौत्य* के लिए कौरवों के यहाँ जाने के निकले तब रेवती नक्षत्र था। वहाँ से *आते समय उन्होंने कर्ण से भेंट की। इस भेंट में कर्ण ने ग्रहस्थिति यों* बताई है—उग्र ग्रह शनैश्चर रोहिणी नक्षत्र में मंगल के पीड़ा दे रहा है। *ज्येष्ठा नक्षत्र में मंगल वक्र होकर* अनुराधा से *मिलना चाहता* है। महापातसञ्ज्ञक ग्रह चित्रा नक्षत्र के पीड़ा दे रहा है। चन्द्र के चिह्न बदल गये हैं और राहु सूर्य के ग्रसित करना चाहता है। (उद्यो०

अ० १४३)। श्रीकृष्ण के चले जाने पर दुर्योधन अपनी सेना के साथ पुष्य नक्षत्र में कुरुक्षेत्र की ओर रवाना हुआ। उस दिन कार्तिक वदी षष्ठी रही होगी। भीष्मपर्व के आरम्भ मे धृतराष्ट्र से भेंट कर व्यास ने युद्ध बन्द कराने का प्रयत्न किया। कुछ अनिष्टकारक ग्रहों का उल्लेख कर उन्होंने कहा—१४. १५ १६ दिनों के पक्ष तो मैंने सुने हैं, परन्तु १३ दिनों का पक्ष यही आया है। इससे भी अधिक विपरीत बात है एक महीने में चन्द्र और सूर्य को त्रयोदशी को ही ग्रहण लगना। व्यास मार्गशीर्ष में किसी दिन, सम्भवत सुदी में, गये होंगे। उसके पहले का पक्ष १३ दिन का था। अमावास्या को सूर्यग्रहण हुआ था। एक ही महीने में दो ग्रहण हुए थे. इससे मालूम पडता है कि चन्द्रग्रहण कार्तिक पूर्णिमा को हुआ होगा। युद्ध के आरम्भ के सम्बन्ध में कहा गया है—उस दिन चन्द्रमा मघा नक्षत्र पर आ गया था। शल्यपर्व में लड़ाई के अन्त में बलराम आये, तब उन्होंने कहा—मैं पुष्य नक्षत्र में गया था और श्रवण में आया हूँ। इससे युद्ध के अठारहवें दिन श्रवण नक्षत्र का होना सिद्ध होता है। इससे मालूम होता है कि युद्ध के आरम्भ में चन्द्रमा मृग नक्षत्र में था। सम्भव है चन्द्रमा कुछ आगे पीछे रहा हो परन्तु मघा नहीं हो सकता। हम युद्धारम्भ में चन्द्रमा का मृग में होना मानते हैं। उस दिन पूर्णिमा या सुदी चतुर्दशी या त्रयोदशी रही होगी।

श्रीकृष्ण, कर्ण और व्यास के उपर्युक्त कथनों से कार्तिक वदी अमावास्या को, युद्ध के पहले, सूर्यग्रहण का होना निश्चित है। कार्तिक सुदी पूर्णिमा को चन्द्रग्रहण हुआ होगा लेकिन व्यास के वचन से यह ध्वनि निकलती है कि दोनो ग्रहण एक ही दिन पडे थे। हमने गणित करके कार्तिक वदी अमावास्या की ग्रहस्थिति देख ली है। सूर्य ग्रहण का यह प्रमाण बहुत पुष्ट है। भारती युद्ध के पहले सूर्य ग्रहण होने की बात मूल भारत की है जब कि भारतवासी ग्रहगणित करना नहीं जानते थे।

कहा गया है कि युद्ध के आरम्भ में चन्द्रमा मघा नक्षत्र में था। परन्तु *बलराम के वाक्य से मालूम पड़ता है कि* वह मृग नक्षत्र में अथवा उसके आगे पीछे के किसी नक्षत्र में था। कर्ण का कथन है कि ज्येष्ठा से वक्र होकर मंगल अनुराधा की ओर जा रहा है। उधर व्यास के वचन से मालूम होता है कि मंगल वक्र होकर मघा नक्षत्र में आ गया है। *सारांश यह कि एक भी ग्रह की स्थिति का* मेल नहीं मिलता। अतः ये बातें कल्पना से बनाई गई जान पड़ती हैं। यदि भारती युद्ध का ब्राह्मणकाल में होना सच है तो कहना पड़ता है कि उस समय सातों ग्रहों का ज्ञान होने पर भी उनकी ओर न तो ऋषियों का विशेष ध्यान था और न उनकी गति उन्हें मालूम थी। *आगे गर्ग के समय में बहुत कुछ ग्रह सम्बन्धी ज्ञान हो गया* था। इससे अनुमान होता है कि सौति ने गर्ग के तत्कालीन ग्रन्थ से भयङ्कर प्रसंग सूचक दारुण उत्पातों को लेकर लिख दिया है। उनमें बतलाई हुई ग्रहस्थिति काल्पनिक है।

परन्तु महाभारत में बतलाई हुई ग्रहस्थिति को काल्पनिक मान लें तो कोई समझदार आदमी दो-दो तीन तीन नक्षत्रों में ग्रहों की स्थिति कैसे बतलायेगा ? टीकाकार ने इस स्थिति को वेध की कल्पना माना है, *जो हमारी समझ में अनेक अंशों में ठीक है।* टीकाकार ने इस विषय को समझाने के लिए नरपतिविजय नामक ज्योतिष ग्रन्थ से 'सर्वतोभद्रचक्र' लिया है। हम यह नहीं कहते हैं कि युद्ध काल में इस ग्रहस्थिति को प्रत्यक्ष देखकर युद्ध के समय में ही महाभारत में लिखा है। वह इतनी अनिश्चित है कि गणित की रीति से उसके द्वारा समय ठहराना सम्भव ही नहीं है। अत मेगास्थिनीज और शतपथ ब्राह्मण के प्रमाण से निश्चित भारती युद्ध समय ही, अर्थात् ३१०१ वर्ष ई० पू०, ठीक है।

पाँचवाँ प्रकरण

इतिहास किन लोगों का है ?

प्राचीन काल में कौरवा और पाण्डवों को 'भरत' कहते थे। इसी से उनका युद्ध भारती युद्ध कहा जाता है। दुष्यन्त और शकुन्तला का बेटा प्रसिद्ध भरत उनका पूर्वज था, इससे उसके वंशजों की संज्ञा 'भारता.' है। महाभारत में इस नाम का प्रयोग दोनों दलों के लिए है। ऋग्वेद में 'भरता.' नाम सूर्यवंशी क्षत्रिय आर्यों के लिए है, उन लोगों के लिए नहीं जिनमें भारती युद्ध हुआ। महाभारत के भारत और ऋग्वेद के भारत बिलकुल अलग अलग हैं। यह बात महाभारत (आ० अ० ७४) में कही गई है कि पुराने भारत प्रसिद्ध हैं, वे दूसरे लोग हैं।

ऋग्वेद में न तो सूर्यवंश का नाम है, न चन्द्रवंश का। उसमें चन्द्रवंश के उत्पादकों के नाम हैं पुरूरवा, आयु, नहुप और ययाति। ऋग्वेद में एक जगह ययाति के पाँच पुत्रों तथा उनसे उत्पन्न पाँच लोगों के भी नाम हैं। ये चन्द्रवंशी क्षत्रिय आर्य अग्नि के उपासक और इन्द्रादि देवताओं के भक्त थे। ये गंगा की घाटियों से होकर सरस्वती के किनारे आये और वहीं बस गये। ऋग्वेद में कहा है—हे इन्द्र और अग्नि, यद्यपि तुम यदुओं में और तुर्वशों में, इसी तरह द्रुह्युओं में अनुओं में और पुरुओं में हो, तथापि यहाँ आओ और निकाले हुए इस सोमरस को पिओ। (१-१०८)। इससे अनेक अनुमान निकलते हैं। (१) ये पुराने आर्यों की भाँति इन्द्र और अग्नि के उपासक थे। (२) ये पाँचों एक ही वंश के होंगे। उनमें यदु और तुर्वशु सगे थे और द्रुह्यु, अनु एवं पुरु सगे थे। चन्द्रवंशी ययाति की दो स्त्रियों से उत्पन्न पाँच पुत्रों की कथा यहाँ व्यक्त होती है।

ऋग्वेद से पता चलता है कि इन पीछे से आये हुए चन्द्रवंशी आर्यों का पहले के भारतों से झगडा हुआ। ऋग्वेद के कुछ सूक्तों में 'दशराज्ञ' नाम के एक बड़े युद्ध का वर्णन है। एक ओर भरत और

उनका राजा सुदास तथा पुरोहित वशिष्ठ और त्रित्सु थे। दूसरी ओर पाँच आर्य राजा—यदु, तुर्वसु, द्रुह्यु अनु और पुरु तथा उनके मित्र पाँच अनार्य राजा थे। ऋग्वेद का युद्ध भरत पुरु के बीच हुआ था और भारती युद्ध कुरु पाञ्चाल के बीच।

चन्द्रवंशी आर्य—महाभारत से चन्द्रवंश का मूल पुरुष पुरूरवा सिद्ध होता है। उसकी माता इला थी। हिमालय के उत्तर के वर्ष को इलावर्ष कहते हैं। इससे ज्ञात होता है कि पहले वे लोग हिमालय के उत्तर में रहे होंगे। ऋग्वेद म पुरूरवा और उर्वशी अप्सरा का वर्णन है। जान पड़ता है, यह हिमालय में ही था। पुरूरवा के बाद आयु और नहुष का नाम है। ऋग्वेद में इनका भी उल्लेख है। इसके बाद ययाति है। यह वश का मुखिया था। ऋग्वेद में इसका नाम दनु के साथ आया है। इसने शुक्र की बेटी देवयानी और असुरकन्या शर्मिष्ठा से विवाह किया था। ये दोनों हिमालय के उस तरफ की अर्थात् पारसियों की—असुरों की—बेटियाँ थीं। इनके पाँच पुत्र थे और वे ऋग्वेद में प्रसिद्ध हैं। यही पाँच पुत्र पहले हिन्दुस्तान में आये। ज्ञात होता है, ये घाटियों से आकर सरस्वती के किनारे पहले से आबाद सूर्यवंशी आर्यों के राज्य में घुस पड़े। ऋग्वेदकाल में उन्होंने पञ्जाब पर पश्चिम की ओर और अवध की ओर पूर्व में चढ़ाइयाँ कीं, परन्तु सफल न हुए। इस कारण ये लोग सरस्वती के किनारे से गङ्गा यमुना के किनारे किनारे दक्षिण की तरफ़ फैल गये। संहिता और ब्राह्मण से इनका ऐसा ही इतिहास मिलता है।

पुरु—दूसरे आये हुए चन्द्रवंशी आर्यों में पुरु का कुल खूब बढ़ा। ययाति के पाँच पुत्रों में पुरु ही मुख्य राजा हुआ। ऋग्वेद में सरस्वती के सूक्त में वशिष्ठ ने कहा है कि सरस्वती के दोनों किनारों पर पुरु हैं। ऋग्वेद के अनुसार पुरु को दस्युओं (मूल निवासियों) से कई लड़ाइयाँ भी लड़नी पड़ीं। पुरु के वंश में अजमीढ हुआ। उसका उल्लेख भी ऋग्वेद में है। इन पुरुओं और अन्य चन्द्रवंशियों के ऋषि कण्व और

अङ्गिरस थे। पुरु के कुल में आगे चलकर दुष्यन्त और भरत हुए। ऋग्वेद में उनका नाम नहीं है; परन्तु दौष्यन्त भरत का नाम ब्राह्मण में है। इसी भरत के कुल में कुरु हुआ। सरस्वती और यमुना के बीच के मैदान को कुरुक्षेत्र कहते हैं। महाभारत से सिद्ध होता है कि पुरुओं की राजधानी हस्तिनापुर गङ्गा के पश्चिमी किनारे पर थी। इसी वंश में कौरव हुए और इसी से पाण्डवों का भी सम्बन्ध है। भरत और कुरु का उल्लेख ऋग्वेद में नहीं है तथापि इस बात का प्रमाण है कि ऋग्वेद के सूक्तों के अन्त से पहले वे थे, क्योंकि अन्त के एक सूक्त का कर्ता देवापि (शन्तनु का भाई) कौरव वंश में हुआ था।

यदु—ऋग्वेद में यदु लोगों का उल्लेख सदा तुर्वशों के साथ हुआ है। उसमें कण्व ऋषि का भी उल्लेख है। पहले यदु-तुर्वश एक ही जगह रहते होंगे। इनके विषय में पहले वशिष्ठादि ऋषि प्रार्थना करते हैं कि—हे इन्द्र, तू यदु तुर्वशों को मार। परन्तु जब वे यहाँ के पक्के निवासी हो गये तब उनका वर्णन अच्छे ढङ्ग से होने लगा। ऋग्वेद का आठवाँ मण्डल काण्व ऋषियों का है। इसके सूक्तों में वर्णन है कि हमने यदु तुर्वशों से गौएँ लीं। कण्ववंशी ऋषि चन्द्रवंशियों के हितचिंतक दिखाई देते हैं। दुष्यन्त और कण्व के सम्बन्ध की बात इससे समझ में आ जाती है। यदु-तुर्वशों का अच्छा उल्लेख करनेवाले आंगिरस ऋषि भी हैं। छान्दोग्य उपनिषद में देवकीपुत्र कृष्ण को घोर आंगिरस ने उपदेश किया है। यदु के वंशज यादव यमुना के किनारे पर थे। उन्हीं के वंश में श्रीकृष्ण हुए। जान पड़ता है कि यदु-तुर्वशु गौओं का व्यवसाय करते थे। यादवों को राज्य करने का अधिकार न होने की धारणा इसी कारण फैली होगी। श्रीकृष्ण आदि यादव यद्यपि द्वारका में राज करते थे, तथापि गोपालन ही उनका पुराना धन्धा था। उनके इस व्यवसाय

का दिग्दर्शन ऋग्वेद के उल्लेख में है।

पाञ्चाल—हरिवंश से पता चलता है कि पुरु की एक शाखा के वंशज पाञ्चाल हैं। इनका मुख्य पुरुष सृञ्जय ऋग्वेद में प्रसिद्ध है। उनके वंश में सहदेव और सोमक हुए। वे दोनों भी ऋग्वेद में प्रसिद्ध हैं। महाभारत ने पाञ्चालों को सृञ्जय और सोमक भी कहा है। ब्राह्मण में एक स्थान पर पाञ्चाल का अर्थ क्रिवि किया गया है। मालूम नहीं क्रिवि कौन लोग हैं, पर इनका उल्लेख ऋग्वेद में है। सम्भव है पाञ्चालों में पाँच जातियाँ मिल गई हों। ऋग्वेद (६-२७) से जान पड़ता है कि तुर्वसु भी पाञ्चालों में मिल गये होंगे। ब्राह्मणों में कुरु पाञ्चालों की बड़ाई मिलती है। कुरुओं की तरह पाञ्चाल लोग भी यज्ञ कर्ता, विद्वान् और तत्त्वज्ञान के अभिमानी थे। ये पाञ्चाल गङ्गा और यमुना के बीच हस्तिनापुर के दक्षिण में थे। महाभारत से ज्ञात होता है कि गङ्गा के उत्तर में भी इनका आधा राज्य था।

अनु और द्रुह्यु—ऋग्वेद (६-४६) में द्रुह्यु और पुरु का उल्लेख है। कदाचित् पाञ्चालों में द्रुह्यु मिल गये होंगे। हरिवंश के मतानुसार द्रुह्यु के वंशधर गान्धार हैं। पञ्जाब का शिवि औशीनर इसी वंश का है। पुराणकार कहते हैं कि इसी वंश में भारत युद्ध कालीन शैब्य राजा हुआ था। तुर्वसु का वंश नष्ट होकर पुरु के वंश में मिल गया। उसके सम्मता नाम की एक बेटी थी। उसी से दुष्यन्त हुआ। आदिपर्व में यह वचन है—यदु से यादव, तुर्वसु से यवन, द्रुह्यु से भोज और अनु से म्लेच्छ उत्पन्न हुए। इससे सिद्ध है कि महाभारत काल में इनकी सन्तान के विषय में निराली समझ थी। इससे यह भी मालूम पड़ता है कि सौति ने न तो हरिवंश लिखा है, न उसकी जाँच ही की है। महाभारत की यह बात मान लेने के योग्य है कि द्रुह्यु से भोजों की उत्पत्ति हुई होगी। इसके विपरीत हरिवंश का यह कथन कि उनसे गान्धार लोग उत्पन्न हुए, पीछे का है। गान्धार बहुत करके पहले आये हुए आर्यों के वंशज अर्थात् सूर्यवंशी होंगे। रामायण में लिखा है कि भरत के पुत्र ने सिन्धु के

उस ओर पुष्कलावती बसाई। द्रुह्यु के भोज उत्पन्न हुए। भारती युद्ध के समय मगध और शूरसेन आदि देशों में वही लोग प्रबल थे। इन्हीं के कुल में जरासन्ध, कंस आदि हुए थे।

चन्द्रवंशियों की भिन्नता—श्रीकृष्ण ने सभापर्व में कहा है—इस समय हिन्दुस्तान में ऐल और ऐक्ष्वाक के वंश के १०० कुल हैं। उनमें ययाति के कुल के भोजवंशी राजा गुणवान् हैं और चारों ओर फैले हुए हैं। ऐल और ऐक्ष्वाक शब्दों से चन्द्रवंश और सूर्यवंश का बोध होता है। ऋग्वेद काल से लेकर महाभारत काल तक केवल यही बात पाई जाती है कि भारतवर्ष में दो वंशों के आर्य आये थे। पहले भरत या सूर्यवंशी क्षत्रिय आये फिर यदु, पुरु आदि वंश के क्षत्रिय। ब्राह्मण काल में इस दूसरे वंश के क्षत्रियों का उत्कर्ष देख पड़ता है। वही भारती युद्ध के समय में रहा होगा। श्रीकृष्ण के कथन से मालूम पड़ता है कि भारत में ययाति के वंश का भोजकुल अधिक प्रबल था। भोजों के दबदबे के मारे यादव लोग श्रीकृष्ण के साथ मध्यदेश छोड़ सौराष्ट्र में जाकर द्वारका में बस गये। चन्द्रवंशी क्षत्रिय आर्य थे। इनका धर्म वैदिक था। फिर भी इनमें और पहले के आर्यों में कुछ भेद था। इन क्षत्रियों का वर्ण साँवला रहा होगा। मल्ल विद्या का इन्हें अभिमान था।

पाण्डव—अब देखना है कि पाण्डव कौन थे। कौरवों का राजा हुआ प्रतीप। उसका पुत्र हुआ शान्तनु। शान्तनु के दो पुत्र भीष्म और विचित्रवीर्य हुए। भीष्म के अपना हक छोड़ देने से विचित्रवीर्य गद्दी पर बैठा। उसके धृतराष्ट्र और पाण्डु हुए। धृतराष्ट्र अन्धे थे, इस कारण पाण्डु राजा हुआ। स्वास्थ्य बिगड़ जाने पर पाण्डु के वन में जाने पर धृतराष्ट्र के बेटे दुर्योधन ने राज्य सँभाला। उस समय पाण्डु नि सन्तान था। इस कारण कुन्ती और माद्री ने देवताओं को प्रसन्न करके उनसे पाँच बेटे प्राप्त किये जो पाण्डव कहलाये। पाण्डव हिमालय में ही सयाने हुए। पाण्डु के मर जाने पर वहाँ के ब्राह्मण उन्हें हस्तिनापुर लाकर धृतराष्ट्र को सौंप गये। यहाँ उनसे दुर्योधन का विवाद शुरू

हुआ। उस समय भी यह कल्पना रही होगी कि ये लड़के पाण्डु के नहीं हैं, और इन्हीं से यह भगड़ा आगे बहुत भयङ्कर हो गया। महाभारत में पाण्डवों और भारती युद्ध की पूर्वपीठिका ऐसी ही है। हमारी राय में चन्द्रवंश की अन्तिम शाखा के जो आर्य भारत में बाहर से आये थे उन्हीं में पाण्डव लोग थे। चन्द्रवंश की मूलभूमि इलावर्त था और कुरुओं का जो मूलस्थान हिमालय के उत्तर में था, उसका नाम उत्तर कुरु था। महाभारत का यह वर्णन ठीक जान पड़ता है कि पाण्डु राज्य छोड़कर अपने कुरु लोगों की मूल भूमि में गया और वहाँ कई वर्ष तक रहा। पाण्डु का देहान्त हो जाने पर कुन्ती अपने पाँचों बेटों को लेकर पुराने परिचित भारत को लौट आई। इससे सिद्ध हुआ कि पाण्डव अत्यन्त प्राचीन शाखा के लोग हैं, जो भारत में बिलकुल पीछे से आये थे और हस्तिनापुर में आने के कारण कौरवों से उनका भगड़ा हुआ। उन लोगों ने धृतराष्ट्र से राज्य का आधा हिस्सा ले लिया। उन्हें राज्य की पड़ती भूमि मिली। वहाँ उन लोगों ने इन्द्रप्रस्थ नामक राजधानी स्थापित की। इस प्रकार ऐतिहासिक रीति से कौरवों और पाण्डवों की कथा का मेल मिलता है।

नाग लोग—भारती युद्ध का सम्बन्ध नाग लोगों से भी है। पाण्डवों को यमुना के पश्चिमी किनारे जो हिस्सा मिला वहाँ नाग लोग रहते थे। ये लोग जंगलों में रहते थे और नागों अर्थात् सर्पों की पूजा करते थे। पाण्डवों को वे जंगल साफ़ करने पड़े और वहाँ से नागों को हटना पड़ा। घने जंगल में रहनेवाले नाग लोग आर्यों की बस्ती को सताते भी थे। इस कारण खाण्डव वन को जला देना और वहाँ की उपजाऊ भूमि को बस्ती में मिलाना पड़ा। उस वन के नागों का मुखिया तक्षक था। आदिपर्व के २२८वें अध्याय से ज्ञात होता है कि तक्षक अपना देश छोड़कर कुरुक्षेत्र चला गया। जान पड़ता है कि फिर वह पंजाब में तक्षशिला के पास जाकर बस गया। इन नागों से पाण्डवों का वैर दो तीन पीढ़ियों तक रहा। खाण्डव

न के जलाने का बदला तक्षक ने अर्जुन के पौत्र से लिया। तक्षक के काटने से परीक्षित का देहान्त होने की कथा का यही रहस्य है। भारती युद्ध का काल ३००० वर्ष ई० पू० मान लिया जाय तो फिर महाभारत उसके २५०० २७०० वर्ष पश्चात् तैयार हुआ। इतने समय के बीच लोगों की कल्पना और दन्तकथा में यदि नाग जाति प्रसिद्ध नाग अथवा सर्प हो गई तो कुछ अचरज नहीं।

पहले किसी समय नाग और सर्प दो भेद रहे होंगे। भगवद्गीता में यह भेद यों बताया गया है—मैं सर्पों में वासुकि' और 'नागों में अनन्त' हूँ। अर्थात् गीता के समय अथवा भारत-काल में सर्प और नाग दोनों तरह के लोग हिन्दुस्तान में थे। सर्प सविष थे अर्थात् आर्यों को सताते थे और नाग निर्विष थे या आर्यों के अनुकूल थे। परन्तु सौति के समय यह भेद नहीं जान पड़ता। महाभारत में स्थान स्थान पर सर्प और नाग एक ही प्रतीत होते हैं। फिर भी यह मानने के लिए जगह है कि शेष और अनन्त आदि नाग सर्पों से भिन्न हैं। जनमेजय के सत्र का नाम सर्पसत्र है। इसमें विषधर सर्प जलाये गये हैं। पर वे अनन्त अथवा शेष के कुल के न थे। कदाचित् सर्प और नाग लोग अलग अलग स्थानों में रहते थे। आदिपर्व के तीसरे अध्याय में उत्तङ्क ने नागलोक में जाकर जो स्तुति की है, उससे महत्त्व की बातें मालूम होती हैं। ज्ञात होता है कि नाग लोग गङ्गा के उत्तर में भी रहते थे।

युद्ध में विरोधी दल के लोग—अब यह देखना है कि दोनों दलों में कौन कौन आर्य थे। दुर्योधन की ओर ११ अक्षौहिणियाँ थीं। उसके दल में (१) शल्य (मद्रों का स्वामी, पञ्जाब), (२) भगदत्त (पूर्व की ओर), (३) भूरिश्रवा (पञ्जाब), (४) कृतवर्मा (काठियावाड के निकट), (५) जयद्रथ (सिन्धु), (६) सुदक्षिण (कम्बोज या अफ़ग़ानिस्तान) (७) नील (नर्मदा), (८ ९) अवन्ति के दो राजा, (१०) केकय (पञ्जाब), (११) शकुनि (गांधार) तथा, शिवि और बृहद्बल (कोसल) थे। पाण्डवों की ओर थे—(१) सात्यकि युयुधान (द्वारका), (२)

धृष्टकेतु (चेदि), (३) जयत्सेन (मगध), (४) पाण्ड्य (समुद्रतट), (५ द्रुपद (पाञ्चाल), (६) विराट (मत्स्य), (७) काशी का धृष्टकेतु, चेकितान युधामन्यु और उत्तमौजा प्रभृति। पाण्डवों की ओर ७ अक्षौहिणियाँ थीं। ये सब नक्षागन चन्द्रवंशी थे।

भारत में आर्य हैं—अब यह देखना है कि हिन्दुस्तान में आर्य लोग हैं भी और ये चन्द्रवंशी आर्य थे या कौन थ। ऋग्वेद के उल्लेखों से स्पष्ट होता है कि भारत में आर्य जाति के लोग थ और आर्य शब्द पहले जातिवाचक था। मूल निवासी दास शब्द के विरोध में आर्य शब्द व्यवहृत होता था। ऋग्वेद (१० ३८ ३) में यह है—हे इन्द्र! जो हमसे युद्ध करना चाहता हो वह चाहे दास हो चाहे आर्य, चाहे अदेव। इस ऋचा म तीन जातियों का उल्लेख है। आर्य अर्थात् भारत म आये हुए आर्य, दास अर्थात् यहाँ के मूल निवासी, अदेव अर्थात् असुर यानी जेन्दावस्ता में वर्णित पारसी। वैदिक काल में आर्यों और दासों का विरोध था जो ब्राह्मण-काल में भी मौजूद था। धीरे धीरे शूद्रों में दासों का अन्तर्भाव हो गया। इस कारण इस तरह का विरोध नहीं रहा कि यह आर्य है और यह दास है। फिर तो आर्य और म्लेच्छ का भेद उत्पन्न हो गया और लोग समझने लगे कि ये भिन्न भिन्न जातियाँ हैं। भारत के भिन्न भिन्न लोगों की गणना करते समय आर्य म्लेच्छ और मिश्र—इन तीन भेदों का वर्णन महाभारत में है।

अर्जुन ने अश्वमेध के अवसर पर जब दिग्विजय किया, तब अनेक राजाओं ने विरोध किया, जिनमें म्लेच्छ और आर्य आर्यावर्त के राजा थ (अश्व० अ० ७३)। इससे स्पष्ट है कि सिकन्दर के बाद तक—महाभारत काल पर्यन्त—भारत म कुछ राजा लोग अपने को आर्य कहते थे और कुछ म्लेच्छ माने जाते थे।

भीष्मपर्व की देशगणना में आर्यदेश नहीं बतलाया गया है तथापि उत्तर में पञ्जाब से लेकर अङ्ग-वङ्ग तक और दक्षिण में अपरान्तक देश तक आर्य लोग फैले रहे होंगे, उस सीमा के बाहर म्लेच्छों की

स्ती का होना मालूम पड़ता है। म्लेच्छों और वेदबाह्य लोगों में अङ्ग, ङ्ग, कलिङ्ग और आन्ध्र देश की भी गणना की गई है। यवन, चीन, काम्बोज, हूण और पारसीक आदि तथा दरद, काश्मीर, खशीर, पह्लव आदि दूसरे म्लेच्छ उत्तर ओर बताये गये हैं। इससे मालूम होता है कि महाभारत-काल में म्लेच्छ कौन कौन लोग समझे जाते थे। इसी कारण हिमालय तथा विन्ध्य के बीच का देश आर्यावर्त समझा जाता था।

ब्राह्मण ग्रन्थों में कुरु, पाञ्चाल, कोसल और विदेह लोगों के वर्णन बराबर मिलते हैं। अर्थात् पूर्व ओर गङ्गा के उत्तर और अङ्ग देश तक आर्यों की बस्ती थी। शौरसेन, चेदि और मगध का नाम ब्राह्मण ग्रन्थों में नहीं है। फिर भी यह बात मान ली जा सकती है कि शौरसेन, चेदि और मगध लोग उस समय यमुना के किनारे फैले हुए थे। पञ्जाब में तो आर्यों की ख़ास बस्ती थी। पञ्जाब से लेकर काठियावाड़ तक और पूर्व में विदेह तक आर्य फैले हुए थे। इन्हें वेद और महाभारत में आर्य कहा है।

शीर्षमापन शास्त्र का प्रमाण—शीर्षमापन शास्त्र एक नवीन शास्त्र है, जिससे यह निश्चय किया जा सकता है कि अमुक लोग आर्य जाति के हैं या नहीं। अनेक आर्यजातियों की तुलना करके निश्चय कर लिया गया है कि आर्यों की नाक अक्सर ऊँची और लम्बी होती है और सिर लम्बा होता है।

सन् १९०१ की मनुष्यगणना के समय भारत के प्राय सभी प्रान्तों के कुछ लोगों की जाँच उक्त शास्त्र के अनुसार की गई थी। उससे प्रकट हुआ कि (१) पञ्जाब, कश्मीर और राजपूताना में बहुत करके सभी लोग आर्य हैं। (२) संयुक्त प्रदेश और बिहार के लोग आर्य और द्रविड़ जाति की मिश्रित सन्तान हैं। (३) बङ्गाल और उड़ीसा के लोग प्राय मङ्गोल और द्रविड़ जातियों के हैं। ४) सीलोन से लेकर मदरास, हैदराबाद, मध्य प्रदेश और छोटा नागपुर के निवासी द्रविड़ जाति के हैं, (५) पश्चिम की ओर गुजरात, महाराष्ट्र, कोंकण और कुर्ग तक द्रविड़ और शक जाति का मिश्रण है।

ऊपर पाँच भागों के लोगों के वर्णन का मेल उन अनुमानों से भी मिलता है, जो वैदिक साहित्य और महाभारत से निकाले गये हैं। पहले के आये हुए आर्यों के भारत-कालीन मुख्य लोग मद्र, केकय और गान्धार थे। ये गोरे और सुन्दर होते थे। मध्य देश के क्षत्रिय इनकी बेटियों से ब्याह करते थे। पाण्डु की एक रानी माद्री थी। धृतराष्ट्र की स्त्री भी गान्धार देश की थी। पञ्जाब के मूल निवासी थोड़े से दस्यु लोग आर्यों के आ जाने से धीरे धीरे दक्षिण में हट गये होंगे। शीर्षमापन शास्त्र के अनुसार द्रविड लोगों की मुख्य विशेषता है नाक चपटी होना। द्रविडों को आर्य ऋषियों ने वेद में 'निर्नासिक दस्यु' कहा है। ऋग्वेद-काल से लेकर अब तक पञ्जाब के अधिकांश लोग आर्य हैं, रङ्ग उनका अब भी गोरा और नाक ऊँची है।

संयुक्त प्रदेश और बिहार में मिश्र जाति के आर्य हैं। बिहार वैदिक कालीन विदेह है और कोसल है अयोध्या। इन प्रदेशों के निवासी सूर्यवंशी क्षत्रिय हैं। पञ्जाब से उनका सम्बन्ध है। अवध पहले से ही स्वतन्त्र है। शेष संयुक्त प्रदेश में चन्द्रवंशी क्षत्रियों और ब्राह्मणों की बस्ती है। ऋग्वेद से सिद्ध होता है कि पहले चन्द्रवंशी लोग सरस्वती और गङ्गा के किनारे बसे थे। फिर दक्षिण की ओर वर्तमान

निषाद कन्या मत्स्यगन्धा से विवाह किया था। एक नागकन्या के
में और जरत्कारु ऋषि के औरस से आस्तीक हुआ था। इस मिश्रण
कारण आर्यों का साँवला रङ्ग हो गया होगा। कृष्ण द्वैपायन,
कृष्ण, अर्जुन और द्रौपदी के कृष्णवर्ण का उल्लेख है ही। भारत
जा दूसरी जाति के चन्द्रवशी आये उनके मस्तक चौड़े थे। गुजरात,
ठियावाड और विदर्भ आदि देशों में जो लोग हैं उनके सिर चौड़े हैं।
हाभारत से प्रकट है कि इन प्रान्तों में चन्द्रवशीय क्षत्रिय आबाद थे।
ीर्षमापन शास्त्र के पण्डितों ने मान लिया है कि खोपड़ी का परिमाण
ाश का कोई निश्चित लक्षण नहीं है, क्योंकि द्रविड लोगों का
ी सिर लम्बा होता है। नाक का परिमाण ही मुख्य चिह्न है। और
चन्द्रवशी क्षत्रियों की खोपडी चौडी भी हो, तो भी ऊँची नाक होने
के कारण वे आर्यवशी ही हैं। उनका रग साँवला भले हो, पर वे
आर्यवश के हा हैं। यह निश्चित है कि भारती युद्ध आर्यजाति के
चन्द्रवशा क्षत्रियों मे हुआ था।

राक्षस—पाण्डवों की ओर घटोत्कच और दुर्योधन की ओर
अलम्बुष, ये दो राक्षस थे। महाभारत और रामायण आदि में
बतलाया गया है कि राक्षस नरमासभोजी थे। जान पड़ता है कि
भारत में जो थोडी सी जातियाँ प्राचीन समय में नरमांस खाती थीं
उन्हीं का नाम राक्षस था। इन राक्षसों या यातुधानों का नाम ऋग्वेद
तक म है। भारती युद्ध के समय राक्षस जाति बहुत थोड़ी रह गई
होगा। महाभारत के समय यह काल्पनिक हो गइ थी और तब उसम
विलक्षण शक्ति का मान लेना सहज ही है।

पाण्ड्य—पाण्डवों की ओर से पाण्ड्य राजा के युद्ध करने का
वर्णन है। तो क्या भारती युद्ध के समय उनका अस्तित्व था? युद्ध
में आन्ध्र और द्रविड़ आदि का वर्णन तो सौति के समय का है।
महाभारत-काल मे हिन्दुस्तान के बिलकुल दक्षिणी कोने तक का पता
? आर्यों को अवश्य लग चुका था। और दक्षिण में, यहाँ के युद्धकालीन

वर्णनों के अनुसार, शिव और विष्णु की पूजा युद्ध के पहले ही स्थापित हो गई थी। सिकन्दर के साथ आये हुए भूगोलवेत्ता इराटास्थेनिस ने लिखा है कि सिन्धु मुख से कन्या कुमारी तक समुद्र का किनारा कितने कोस लम्बा है। कनिंघम ने उसके वर्णन को करीब-करीब सही माना है। सौति के समय में दक्षिणी किनारे के पास पाण्ड्य लोग बड़े प्रबल राजा थे। मेगास्थिनीज़ ने भी इनका वर्णन किया है हरिवंश में पाण्ड्य का सम्बन्ध यदु के वंश से जोड़ा गया है। इससे प्रतीत होता है कि जिन लोगों में भारती युद्ध हुआ था उनकी सूची में पाण्ड्यों का भी नाम आ गया होगा।

संसप्तक—भारती युद्ध में यवन (यूनानी) नहीं थे। महाभारत के समय इनका नाम प्रसिद्ध होने के कारण पाण्ड्यों की तरह ये भी घसीट लिये गये होंगे। पर संसप्तक थे कौन ? महाभारत में कहीं भी नहीं लिखा है कि ये अमुक देश के थे। युद्ध में मर मिटने की शपथ कर ये लोग युद्ध करने जाते थे, इससे ये संसप्तक कहे जाते थे। ये सात जातियाँ एक ही जगह की रहनेवाली होंगी और सैन्य में सगठित होंगी। इस कारण इनका नाम संसप्तक हो गया होगा। इनको संसप्तकगण कहा है और इनके साथ नारायण गण और गोपाल गण का भी उल्लेख है। ये लोग सीमाप्रान्त के आधुनिक 'क़बीले' की तरह, पहाड़ी लोग थे, जिनका कोई राजा न था।

भारतीय आर्यों का शारीरिक स्वरूप—मेगास्थिनीज़ ने लिखा है कि समूचे एशिया के लोगों में भारतीय लोग खूब ऊँचे और मज़बूत होते हैं। उसका कहना है कि यहाँ खाने पीने की सुविधा होने के कारण यहाँवाले मामूली से कुछ अधिक ऊँचे और तेजस्वी होते हैं। हमारी समझ में यह भी कारण है कि वे लोग एक तो आर्यवंशी थे और उस समय इन लोगों की वैवाहिक स्थिति भी बहुत उत्तम थी। ब्रह्मचर्य-रक्षा पर वे कड़ी निगाह रखते थे। चन्द्रवंशी क्षत्रियों को मल्ल विद्या का अभिमान था। भीम और जरासंघ के,

ाणान्तक मल्ल-युद्ध का वर्णन सभापर्व में है। कृष्ण और बलराम कंस के आश्रित चाणूर आदि कई मल्लों को पछाड़ा था। जरासन्ध : यहाँ हंस और डिम्भक तथा विराट के यहाँ कीचक इत्यादि महा-ल्ल थे। प्राचीन काल के सभी तरह के युद्धों में शारीरिक शक्ति ी आवश्यकता होती थी। इसके लिए क्षत्रिय और ब्राह्मण शारी-रक शक्ति बढ़ाने का अभ्यास किया करते थे।

भारत के आर्य जैसे सशक्त थे, वैसे ही सुन्दर भी थे। यूनानी तिहासकारों ने लिखा है कि पोरस का स्वरूप अच्छा था। उन्होंने ऐसे सौन्दर्य की बहुत प्रशंसा की है जो सोफिडीस को शोभा दे। सोफिडीस से अश्वपति का तात्पर्य है। रामायण और महाभारत में केकय अश्वपति का वर्णन है। मद्र लोग इसी जाति के थे। कैकेयी और माद्री परम सुन्दरी थीं। माद्री का पुत्र नकुल बहुत सुन्दर था।

वर्ण—आर्यों के गोरे, साँवले और पीले ये तीन रंग उपनिषदों तक में और महाभारत में दिये हैं। यूनानियों के वर्णन से जान पड़ता है कि महाभारत के समय इन तीनों रंगों के लोग भारत में थे। आश्रमवासिक के अध्याय २५ के वर्णन से देख पड़ता है कि अर्जुन के सिवा और सभी पाण्डव गोरे थे। द्रौपदी, चित्राङ्गदा और नकुल की स्त्री गोरी न थी, शेष सब गोरी थीं। यह गौर वर्ण सदा सोने की रंगत का बतलाया गया है। भारत के लोगों का यह विशेष रंग है। आर्य लोगों का साँवला रंग भी द्रविड़ों के काले रंग से बिलकुल भिन्न है। उसकी उपमा महाभारत में इन्दीवर अथवा मधूक-पुष्प से दी गई है।

भारतीय आर्यों की ऊँची नाक और बड़ी-बड़ी आँखें निरी कविकल्पना नहीं हैं। महाभारत में भारतीय आर्यों का क़द ताल-वृक्ष की तरह सीधा और ऊँचा उठा हुआ कहा गया है। वृषस्कन्ध अथवा कपाटवक्ष का वर्णन भी मिलता है। इससे सिद्ध है कि ऊँचे कन्धे और चौड़ी छातीवाले लोग भारतीय आर्यों में बहुत थे।

आयु—भारतीय आर्यों की लम्बी उम्र होती थी। महाभारत में जिनका वर्णन है, वे सभी दीर्घायुषी थे। युद्ध के समय श्रीकृष्ण ८३ वर्ष के थे और अर्जुन की अवस्था ६५ वर्ष या इससे भी अधिक थी। निज धाम को जाते समय श्रीकृष्ण की आयु १०१ या ११९ की थी। उस समय उनके पिता वसुदेव जीवित थे। वे कम से कम १४० के तो होंगे ही। युद्ध के समय द्रोण की अवस्था ८५ वर्ष की थी और भीष्म तो १०० वर्ष के ऊपर रहे होंगे। यूनानी इतिहासकार अरायन ने लिखा है कि भारत में १४० वर्ष तक लोग जीवित रहते हैं। सौ वर्ष से ऊपर की उम्रवाले बहुत लोग मिलते हैं। यूनानियों ने ऐसे लोगों का एक अलग नाम होना लिखा है। शान्तिपर्व में कहा है—जो लोग बीस या तीस के भीतर हैं वे सभी १०० वर्ष पूर्ण होने के पहले ही मर जायँगे। इस वाक्य से आयु की मर्यादा अधिक से अधिक १२० या १३० वर्ष की समझी जाती थी।

छठा प्रकरण

वर्णव्यवस्था, आश्रमव्यवस्था और शिक्षा

(१) वर्णव्यवस्था

भारतीयों की समाज स्थिति का मुख्य अङ्ग वर्ण व्यवस्था है। जिस प्रकार की वर्ण-व्यवस्था भारत में चली है, वैसी और किसी देश में प्राचीन काल में अथवा आजकल स्थापित नहीं हुई। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र वर्णों का अर्थ सरसरी तौर पर यही देख पड़ता है। परन्तु आज कल इतने से ही काम नहीं चलता। भारत में अब अनेक जातियाँ हैं और महाभारत के समय में भी थीं। मेगास्थिनीज़ ने सात मुख्य जातियों का उल्लेख किया है। इसलिए हमें ऐसा कोई लक्षण स्थिर कर लेना चाहिए जिससे वर्ण या जाति का मुख्य स्वरूप मालूम हो। मेगास्थिनीज़ कहता है कि कोई जाति न तो अपनी जाति के बाहर,

विवाह कर सकती है और न अपनी जाति के रोजगार के सिवा दूसरा पेशा ही। अर्थात् जाति इन्हीं दो बातों के घेरे में है। इसी कारण जातियों का अलगाव स्थिर रहा।

ब्राह्मण और क्षत्रिय—भारत में ऋग्वेद के समय जब आर्य आये तब उनमें पेशे के कारण दो जातियाँ थीं। परन्तु उस समय इनमें अन्य बन्धन न थे। न तो इनके आचार विचार विभिन्न थे और न इनमें बेटी व्यवहार या पेशे की कोई वैसी रुकावट थी। महाभारत में उल्लेख है कि प्रतीप का बड़ा लड़का देवापि क्षत्रिय का व्यवसाय छोड़कर वन में जाकर तप करने लगा। मतिनार के वंश में कण्व हुआ था। वह ब्राह्मण हो गया और उसके सभी वंशज ब्राह्मण ही हुए। ये कण्व लोग ऋग्वेद के कई सूक्तों के कर्ता हैं।

परन्तु ब्राह्मणों का यह आग्रह था कि ब्राह्मण का बेटा ब्राह्मण हो और क्षत्रिय का बेटा क्षत्रिय। उधर विश्वामित्र का यह आग्रह था कि यदि क्षत्रिय के बेटे ने अपनी बौद्धिक शक्ति बढ़ा ली हो तो उसके ब्राह्मण होने में क्या बाधा है? अन्त में जीत विश्वामित्र की हुई और वे स्वयं ब्राह्मण हो गये। यही क्यों, फिर तो वे कई ब्राह्मण कुलों के प्रवर्तक हो गये। आदिपर्व में वशिष्ठ और विश्वामित्र की जो कथा है उससे वह बहुत प्राचीन काल की जान पड़ती है। वह कथा सूर्यवंशी क्षत्रियों के समय की और पञ्जाब की है। उस समय जो क्षत्रिय ब्राह्मण कहलाने की महत्त्वाकांक्षा करते थे वे ब्राह्मण हो सकते थे, परन्तु यह प्रकट है कि ऐसे व्यक्ति बहुत थोड़े होंगे। इसके सिवा ब्राह्मणों का व्यवसाय वेद पढ़ना एवं यज्ञ-यागादि करना कराना अत्यन्त कठिन था। इस कारण अन्त में वह ब्राह्मणों के ही हाथ में रहा।

वैश्य और शूद्र—देश में खेती का मुख्य रोजगार था, अतएव पञ्जाब में बसे हुए बहुत से आर्य लोग खेती करने लगे। ये लोग एक ही जगह बस गये या इन्होंने उपनिवेश बनाये, इसलिए ये विश् अथवा वैश्य अर्थात् सामान्य लोग कहलाने लगे। ऋग्वेद में विश् शब्द बराबर

आता है, जिससे प्रकट होता है कि पञ्जाब में तीन जातियाँ उत्पन्न हो गई थीं। इसके पश्चात् जल्दी ही दास अथवा मूल निवासियों का समावेश चौथी शूद्र जाति में होने लगा और ऊपर की तीनों आर्यवंशी जातियों का नाम त्रैवर्णिक हो गया। यहीं से जाति के कड़े नियमों के स्वरूप उत्पन्न होने लगे।

आर्यों की सभी शाखाओं में जाति-पाँति का थोड़ा-बहुत बन्धन था। भारत में जाति बन्धन की जो प्रबलता बढ़ गई थी, उसका कारण बाहर से आनेवाले आर्यों और भारत में रहनेवाले अनार्यों के बीच का महान् अन्तर था। दूसरी आर्यशाखाएँ योरप में जहाँ-जहाँ गईं वहाँ-वहाँ पुराने निवासी बहुत कुछ आर्यवंश के ही थे—उनमें कोई ज्यादा अन्तर नहीं था। पर भारत में यह अन्तर इतना अधिक था कि दोनों जातियों का मिश्रण होना असम्भव हो गया।

शूद्रों के कारण वर्णों की उत्पत्ति—पाश्चात्य देशों में जित और जेता का एक ही वर्ण होने से वर्ण को कोई महत्त्व नहीं दिया जा सका। यहाँ भारत में उनके वर्ण में बहुत अन्तर होने के कारण वर्ण को जाति का स्वरूप मिल गया। जितों के सम्बन्ध से आर्यवंशी लोगों में भी रंग का थोड़ा सा भेद हो गया। कृषिकर्म करने से वैश्यों का रंग पीला हो गया। वायु और व्यासङ्ग के भेद से क्षत्रियों का लाल रंग हो गया। ब्राह्मण गोरे के गोरे बने रहे।

आरम्भ में जब आर्य लोग भारत में आये तब उनमें बेटी-व्यवहार में थोड़ी सी रोकटोक थी। नियम यह था कि स्त्री चाहे जिस वर्ण की हो, पर उसकी सन्तान का वही वर्ण होता था जो पति का होता था। अनुशासनपर्व के ४४वें अध्याय में कहा गया है कि ब्राह्मण तीनों वर्णों की बेटी ले सकता है और उसके उनसे जो सन्तति होगी वह ब्राह्मण ही होगी। पर आगे चलकर महाभारत में ही यह नियम बदल जाता है। अनुशासनपर्व के ४८वें अध्याय में दो ही स्त्रियों से—ब्राह्मण और क्षत्रिय से—ब्राह्मण-सन्तति का उत्पन्न होना कहा गया है। सारांश यह

के अनुशासनपर्व का पहला वचन बहुत करके उस नियम का निदर्शक है जो उस समय प्रचलित था जब आर्य लोग भारत में आये थे। इसी नियम का उपयोग करके ब्राह्मण यदि शूद्रकन्या को ब्याह ले तो उसकी सन्तान ब्राह्मण मानी जाय या नहीं, इस प्रश्न पर बड़ा वाद-विवाद हुआ होगा। अन्त में तय हो गया कि ब्राह्मण शूद्र कन्या को न ग्रहण करे। शूद्रा स्त्री से उत्पन्न पुत्र के दाय-भाग का महाभारत-काल में ही निर्णय कर दिया गया कि उसे $\frac{1}{10}$ अंश मिले। परन्तु महाभारत के पश्चात् स्मृति आदि के समय में यह तय किया गया कि उसे कुछ भी न दिया जाय। अन्त में ब्राह्मण से उत्पन्न शूद्रा स्त्री की सन्तति न तो ब्राह्मण मानी गई और न शूद्र ही। उसका दर्जा भिन्न ही रक्खा गया। अनुशासनपर्व के ४८वें अध्याय में इस जाति का नाम पारशव रक्खा गया है। यदि क्षत्रिय शूद्रा से विवाह कर ले तो उसके गर्भ की सन्तान दूसरे वर्ण की समझी जाने लगी और ऐसी सन्तति का नाम उग्र पड गया। किन्तु वैश्य वर्ण को वैश्य और शूद्र दो ही वर्णों की बेटी ब्याहने का अधिकार था, इसलिए कहा गया है कि दोनों से वैश्य सन्तान उत्पन्न होती है। परन्तु महाभारत काल के पश्चात् यह बात भी नहीं रही। यह तय किया गया कि यदि ब्राह्मण वैश्य की बेटी ब्याह ले तो उसकी सन्तान ब्राह्मण न समझी जायगी। यह अनुलोम-विवाह की बात हुई।

परन्तु प्रतिलोम विवाह के सम्बन्ध में आरम्भ से ही कटाक्ष देख पड़ता है, क्योंकि ऐसे निन्द्य विवाह या सम्बन्ध से उत्पन्न हुई सन्तान का दर्जा बहुत ही हल्का माना गया है और ब्राह्मण स्त्री का वैश्य से उत्पन्न पुत्र वैदेहक कहा गया है। ब्राह्मण स्त्री से शूद्र को सन्तान हो तो वह बहुत ही निन्द्य समझी गई है। वह चाण्डाल मानी जाती थी और यह बन्धन कर दिया गया था कि वह बस्ती के बाहर रहे। अनु० अ० ४८)। ब्राह्मण ग्रन्थों में भी यह नियम देख पड़ता है। इससे पता

 चलता है कि उसका प्रचार बहुत प्राचीन काल से रहा होगा। यह

धारणा बहुत प्राचीन काल से चली आ रही है कि उच्च वर्ण की बेटियों के नीचे के वर्णों की, विशेषतः शूद्रों की, घरवाली होने से भयङ्कर हानि होती है। इसी कारण ब्राह्मण काल से महाभारत-काल तक वर्णसङ्कर की निन्दा की गई है।

वर्णसङ्कर का डर—कुछ लोग समझते हैं कि ब्राह्मण स्त्री से उत्पन्न शूद्र के पुत्र को चाण्डाल मानने की कल्पना केवल धर्मशास्त्र की है वास्तव में ऐसी सन्तान चाण्डाल नहीं मानी गई है। परन्तु शीर्षमापन शास्त्र से यह बात निश्चित हो गई है कि पञ्जाब की अस्पृश्य जातियों में चूहड़ जाति में वास्तव में आर्यजाति का मिश्रण है। सम्भव है कि चाण्डालों की यह जाति ऊपर लिखी रीति से उत्पन्न हो गई हो। चूहड़ों के उदाहरण से व्यक्त होगा कि वर्णसङ्करता के डर से भिन्न-भिन्न जातियाँ किस प्रकार उत्पन्न हो गईं। वर्णसङ्कर की आशङ्का से डरकर चार वर्ण ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र अपने अपने वर्ण में विवाह करने लगे।

भारतीय आर्यों की नीतिमत्ता—भारतीय आर्यों ने आर्यवंशियों को केवल इसलिए उच्च नहीं माना था कि वे शूर होते हैं, व्यवहार करने में चतुर और बुद्धिमान् तथा उद्योगी होते हैं बल्कि उच्चता का कारण उनकी यह कल्पना थी कि आर्य लोग नैतिक सामर्थ्य में सबसे श्रेष्ठ होते हैं। यहाँ तक कि आर्य शब्द का अर्थ भी, जो जातिवाचक था, बदलकर श्रेष्ठ नीतिवाची हो गया। इस अर्थ में वह शब्द पुराने ग्रन्थों में बराबर आता है। भगवद्गीता में 'अनार्यजुष्ट' शब्द इसी अर्थ में आया है।

भारतीय आर्य समझते थे कि वर्ण का स्वभाव के साथ नित्य सम्बन्ध रहने के कारण यदि वर्ण में मिश्रण हो गया तो फिर स्वभाव में मिश्रण अवश्य हो जाना चाहिए। वर्णसङ्कर का अर्थ वे स्वभाव सङ्कर मानते थे। अनेक वर्णनों से उनका यह स्थिर मत मालूम होता है कि उनकी समझ से शूद्र जाति का स्वभाव अनार्य अर्थात् बुरा अवश्य रहना चाहिए। उन्हें विश्वास था कि म्लेच्छ और अन्य वर्णबाह्य जातियाँ दुष्ट होती हैं।

त कारण जातियों के बन्धन के सम्बन्ध में उनका मत अनुकूल हो या और भिन्न-भिन्न जातियाँ विवाह-बन्धन में बँध गईं। यहाँ तक कि ाति का बीज भारतीय समाज में पूर्णता से भर गया। ब्राह्मण, क्षत्रिय ौर वैश्य के स्वाभाविक धर्म अलग अलग स्थिर हो गये। भगवद्गीता ं जातियों के स्वभाव-सिद्ध होने की कल्पना है। उसमें स्पष्ट कह दिया या है कि यह भेद ईश्वर-निर्मित है। इसी कारण जाति के भेद का न्धन स्थिर हुआ और भारत में भिन्न-भिन्न जातियों का वृक्ष फैल गया।

ब्राह्मणों की श्रेष्ठता—महाभारत में बार-बार कहा गया है कि ब्राह्मणों के सम्बन्ध में सबके मन में अत्यन्त आदर भाव होना चाहिए। इसका यह कारण है कि ब्राह्मणों की नीतिमत्ता महाभारत में बहुत ऊँचे दर्जे की वर्णित है। उसमें ब्राह्मणों के तप, सत्यवादित्व और शान्ति का जो वर्णन है उससे तत्कालीन लोगों की ब्राह्मणों के विषय में जो समझ थी, वह भली भाँति प्रकट हो जाती है। आदिपर्व में कण्व ऋषि का जैसा वर्णन है उससे प्रकट है कि ब्राह्मणों ने वेदविद्या पढने और इन्द्रियदमन कर तप करने को ससार में अपना कर्तव्य मान रक्खा था। उक्त गुणों के कारण लोग ब्राह्मणों को केवल आदर की ही दृष्टि से न देखते थे, बल्कि तप सामर्थ्य के कारण वे ब्राह्मणों में विलक्षण शक्ति भी मानते थे।

विवाह बन्धन—चातुर्वर्ण्य की उत्पत्ति कैसी ही क्यों न हो, इसमें सन्देह नहीं कि महाभारत के पूर्व काल से भारत में चातुर्वर्ण्य व्यवस्था थी और यह भी मानना होगा कि इस व्यवस्था का मूल बीज, जो रग या सभ्यता का भेद है, महाभारतकालीन स्थिति में न था। क्योंकि सब वर्णों में सभी रग पाये जाते थे और काम-क्रोध आदि की प्रबलता भी सब जगह थी। इन दोनों बातों का थोड़ा-बहुत स्वरूप महाभारत-काल में भी स्थिर रहा होगा। परन्तु यह मानना चाहिए कि इन वर्णों में परस्पर बेटी व्यवहार करने का ? बन्धन महाभारत के समय मौजूद था। मेगास्थिनीज ने भी कहा है—

ये जातियाँ आपस में ही विवाह करती हैं। केवल ब्राह्मणों को उच्च वर्ण होने के कारण सब जाति की स्त्रियाँ ग्रहण करने की स्वतन्त्रता है। सम्भव है, उसकी यह जानकारी अपूर्ण हो और क्षत्रिय तथा वैश्य भी अपने से नीची जातियों की स्त्रियाँ ग्रहण करते रहे हों।

शान्तिपर्व के २९६वें अध्याय में वे जातियाँ गिनाई गई जो महाभारत के समय अस्तित्व में थीं। मुख्य वर्ण चार थे और उनके सङ्कर अथवा मिश्रण के कारण अधिरथ, अम्बष्ठ, उग्र, वैदेह श्वपाक, पुल्कस, स्तेन, निषाद, सूत, मगध, आयोगव, करण, व्रात्य और चाण्डाल आदि प्रतिलोम तथा अनुलोम विवाह से उत्पन्न जातियाँ बतलाई गई हैं। इसी अध्याय में इस प्रश्न का भी निर्णय कर दिया गया है कि जाति की हीनता कर्म और उत्पत्ति दोनों पर अवलम्बित है। सारांश यह कि सौति के समय वर्ण और जातियाँ अभेद्य हो गई थीं और ब्राह्मण आदि वर्णों में उत्पन्न होने वाले अपने-अपने उत्पादक बाप के वर्ण के माने जाते थे।

पेशे का बन्धन—जिस प्रकार जाति के बाहर विवाह करने का निषेध था, उसी प्रकार जाति का पेशा छोड़कर दूसरा पेशा न करने का बन्धन था। यह कड़ा नियम था कि कोई वर्ण, आपत्काल में अपने से नीचे वर्ण का कोई व्यवसाय कर ले, यानी अनुलोम व्यवसाय कर ले, पर वह अपने से ऊपरवाले वर्ण का प्रतिलोम व्यवसाय न करे। चारों वर्णों के व्यवसाय महाभारत में कथित हैं।

ब्राह्मणों के व्यवसाय—ब्राह्मणों का प्रथम कर्तव्य था अध्ययन करना। महाभारत में वेदाध्ययन और सदाचार को ही उनका कर्तव्य माना है। उनका दूसरा काम था यजन याजन। पूर्वकाल में अग्निस्थापन कर यज्ञ करना गृहस्थाश्रमी ब्राह्मण का मुख्य कर्तव्य था। जब क्षत्रिय और वैश्य यज्ञ करें तब ऋत्विज का कार्य ब्राह्मण करें। विद्वान ब्राह्मणों के निर्वाह के लिए यह समाज व्यवस्था थी। इसी प्रकार ब्राह्मण को दान-प्रतिग्रह का अधिकार था। ब्राह्मणों के तीन-६

कर्तव्य और तीन ही अधिकार थे। उक्त तीनों अधिकारों के द्वारा उन्हें जो द्रव्य प्राप्त हो जाता था, उसी से उनका निर्वाह होता था। महाभारत में कहीं ऐसा उदाहरण नहीं मिलता जिसमें अन्य वर्णों ने ब्राह्मणों के विशेष अधिकारों से काम लिया हो। और और वर्णों को उस उस वर्ण की विद्या ब्राह्मण ही पढाते थे। कौरवों को धनुर्विद्या सिखाने को ब्राह्मण द्रोण नियुक्त किये गये थे। यह बात नहीं कि सभी ब्राह्मण वेदाध्ययन करते रहे हों और अग्नि स्थापित रखते हों। कर्मों का त्याग करनेवाले ब्राह्मण भी समाज में थे। शान्ति-पर्व के ७६वें अध्याय में उनका उल्लेख है। मासिक लेकर पूजा करने, नक्षत्र ज्ञान पर जीविका चलाने, समुद्र में नौका के द्वारा जाने आदि का व्यवसाय करनेवाले, इसी तरह पुरोहित, मन्त्री, दूत, वार्ताहर, सेना में अश्वारोही, गजारोही, रथी अथवा पदाति प्रभृति नौकरी करनेवाले ब्राह्मण उस समय थे। ब्राह्मणों में स्वभाव से ही जिस वैराग्य और शान्ति का प्रभाव रहना चाहिए उसकी कमी हो गई थी और अपनी स्थिति को उत्कर्ष पर पहुँचाने का मोह ब्राह्मणों को होता था। महा-भारतकाल में ब्राह्मण लोग न सिर्फ सिपाहगिरी करते थे, बल्कि खेती, गोरक्षा और दूकानदारी आदि भी किया करते थे।

क्षत्रियों का काम—वेदाध्ययन करके अपने घर में अग्नि स्थापित करके होम करने और यथाशक्ति दान देने का अधिकार क्षत्रियों को था, किन्तु यह उनका व्यवसाय नहीं था। महाभारत में वेदपारङ्गत और यजनशील क्षत्रिय राजाओं के अनेक वर्णन हैं। तो भी क्षत्रियों का वेद प्रावीण्य कम हो गया होगा, क्योंकि युधिष्ठिर के वेद में प्रवीण और यज्ञ में कुशल होने की महाभारत में दो एक स्थानों में निन्दा की गई है। अर्थात् सौति के समय वेद विद्या के पढने की रुचि क्षत्रियों में घट गई थी। क्षत्रियों का विशेष व्यवसाय था प्रजापालन और युद्ध। महाभारत के समय अधिकांश क्षत्रिय युद्ध का पेशा करते थे। आपत्ति के समय भी क्षत्रिय का

याचना न करनी चाहिए। उनके लिए केवल विपत्ति-काल में वैश्यवृत्ति कर लेने की स्वाधीनता थी। युद्ध के अतिरिक्त उनका काम प्रजापालन करना था। राज्य करना क्षत्रियों का विशेष अधिकार था। अन्य वर्णों को राज्य करने का अधिकार न था। राज्य करने का हक़ क्षत्रियों का ही था, इसी सहज प्रवृत्ति के अनुसार युधिष्ठिर की माँग थी कि हम पाँच भाइयों को कम से कम पाँच गाँव तो दो। राज्य करना क्षत्रिय का सहज व्यवसाय था। महाभारत के समय तक उन्होंने राज्य करने के अपने हक़ को

उनकी परिस्थिति बदल गई और शूद्रों को धन प्राप्त करने का अधिकार मिल गया। धीरे धीरे उन्हें यज्ञ यागादि करने और दान देने का भी अधिकार मिल गया। शर्त यह थी कि वे यज्ञिय व्रत का आचरण न करके अमन्त्रक यज्ञ करें (शा० अ० ६०)। 'यजन, दान और यज्ञ का अधिकार सब वर्णों को है। श्रद्धा यज्ञ सब वर्णों के लिए विहित है' इत्यादि वचनों से देख पड़ता है कि आर्य धर्म की अधिकांश क्रियाओं का—श्राद्ध आदि तक का—अधिकार शूद्रों को महाभारत के समय के पहले ही मिल गया था। दास की परिस्थिति से निकलकर जब शूद्रों को खेती आदि करने का अधिकार मिला और वे द्रव्य सम्पादन करने लगे तब यह स्थिति प्राप्त हुई। किन्तु त्रैवर्णिक आर्यों ने वैदिक कर्म का अधिकार शूद्रों को नहीं दिया। वैदिक-काल से लेकर महाभारत के समय तक शूद्रों का पेशा और कर्म का अधिकार बहुत कुछ उच्च कोटि का हो गया।

सङ्कर जाति के व्यवसाय—प्रतिलोम विवाह से उत्पन्न प्रथम जाति सूत की थी। ब्राह्मण स्त्री से क्षत्रिय पति द्वारा इसकी उत्पत्ति बतलाई गई है (अनु० अ० ४८)। यहाँ सूतों का पेशा राजाओं की स्तुति करना बतलाया है। जान पड़ता है, पुराणों का अध्ययन कर कथा सुनाना भी इनका पेशा था। जिसने महाभारत की कथा सुनाई है, वह लोमहर्षण सूत का बेटा था। इसे पौराणिक भी कहा है। राजाओं और ऋषियों की वंशावली रक्षित रखने का काम सूत पौराणिकों का था। सूतों को भी वेद का अधिकार था। सूत अधिरथ का पुत्र कर्ण वेद पढ़ता था। सूत सारथ्य भी करते थे। उनका नाम अधिरथ था। कर्ण अधिरथ का पुत्र था, अर्थात् वह एक सारथी का पुत्र था। वैश्य के ब्राह्मण स्त्री से उत्पन्न सन्तान का नाम वैदेह था। अन्तःपुर की स्त्रियों की रक्षा करना इसका काम था। इसी प्रकार क्षत्रिय स्त्री में वैश्य पुरुष से उत्पन्न सन्तति का नाम मागध हुआ। इन मागधों का काम राजा की स्तुति करना था। इन तीनों उच्च वर्ण के प्रतिलोम

विवाह से उत्पन्न सन्तान को सूत, वैदेह और मागध जातियाँ मानी गई और राजाओं का स्तुति गान करना इनका पेशा हुआ।

वैश्य स्त्री में शूद्र पुरुष से उपजी सन्तति को आयोगव कहते थे। बढ़ईगिरी इनका पेशा हुआ। क्षत्रिय स्त्री में शूद्र से उत्पन्न सन्तान निषाद हैं। मछलियाँ मारने का इनका पेशा था और ये बहेलिया का काम करते थे। ब्राह्मण स्त्री के शूद्र से जो सन्तान हुई वह चाण्डाल है। इसको जल्लाद का काम मिला। अनुलोम जातियों में अम्बष्ठ, पारशव और उग्र जातियाँ कही गई हैं। उनके व्यवसाय का वर्णन (अनु० अ० ४८) नहीं है। एक बात यह कही गई है कि प्रतिलोम सन्तति के बढ़ते-बढ़ते और एक की अपेक्षा दूसरी हीन ऐसी पन्द्रह प्रकार की बाह्यान्तर सन्तति होती है। उनमें से कुछ के नाम ये हैं—ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य का क्रियालोप हो जाय तो उसे दस्यु मानते हैं। ऐसे दस्यु से आयोगव स्त्री में जो सन्तान होती है उसका नाम सैरन्ध्र है। इस जाति के पुरुषों का पेशा राजाओं की और स्त्रियों का रानियों की सेवा करना था। इन सैरन्ध्रों के कई भेद बताये गये हैं, जैसे—मागध सैरन्ध्र, बहेलिया सैरन्ध्र, वैदेह सैरन्ध्र, मद्य निर्माता सैरन्ध्र आदि। सैरन्ध्र स्त्री से चाण्डाल के जो सन्तान होती थी उसका नाम श्वपाक कहा है। इस जाति के लोग गाँव के बाहर रहते और निषिद्ध मांस खाकर निर्वाह करते होंगे। आयोगव स्त्री से चाण्डाल के पुक्कस जाति उपजती है। इस जातिवाले हाथी घोड़े का मांस खाते और कफन पहनते हैं। इनका पेशा मरघट में मुर्दे रखने का था। इन पन्द्रह सङ्कर जातियों के नामों का खुलासा नहीं है, तथापि त्रैवर्णिक प्रतिलोम जाति में सूत, वैदेह और मगध तथा अनुलोम जाति में अम्बष्ठ और पारशव आर्यों की सन्तान समाज में शामिल थी। निषाद, चाण्डाल पुक्कस आदि बाह्य एवं बाह्येतर अनार्य जातियाँ थीं। ये लोग चातुर्वर्ण्य के बाहर होने पर भी उससे बिलकुल अलग न थे।

सौति के समय मध्यदेश में वर्णव्यवस्था का चलन जोरों से देख पड़ता है। कर्णपर्व के ४५वें अध्याय में कहा गया है कि मत्स्य, कुरु, पाञ्चाल, नैमिष और चेदि आदि देशों के लोग धर्म का निरन्तर पालन करते हैं, परन्तु मद्र और पञ्चनद देश के लोग धर्म का लोप कर डालते हैं। महाभारत में यह भी कह दिया गया है कि कारस्कर, महिषक, कालिङ्ग, केरल और कर्कोटक आदि दुर्धर्मी लोगों से सम्पर्क न करना चाहिए। इनमें कई देश दक्षिण के हैं। प्रतीत होता है कि इन देशों में उस समय तक आर्यों की बस्ती कम थी। पञ्जाब का सम्पर्क म्लेच्छ देशों के साथ होने से वहाँ वर्णव्यवस्था में थोड़ी शिथिलता थी।

जातियों के इसी विषय से सम्बद्ध एक और विषय है। शान्ति-पर्व के २९वें अध्याय में लिखा है कि शुरू शुरू में चार ही गोत्र उत्पन्न हुए—अङ्गिरा, कश्यप, वशिष्ठ और भृगु। फिर उनके प्रवर्तकों के कर्मभेद के कारण और और गोत्र उत्पन्न हुए। तप प्रभाव के कारण वे गोत्र उन प्रवर्तकों के नाम से प्रसिद्ध हो गये। समय की गति से ज्ञाता लोग विवाह आदि श्रौत स्मार्त विधियों में इन गोत्रों का अवलम्बन करने लगे। इस अवतरण से प्रकट होता है कि महाभारत के पूर्व काल से गोत्रों की प्रवृत्ति है। मूल गोत्र आज-कल आठ समझे जाते हैं। पाणिनि ने गोत्र का अर्थ अपत्य किया है। तब गोत्र-परम्परा भी वंश परम्परा ही है। सप्तर्षि और अगस्त्य ये आठ आरम्भ के गोत्र प्रवर्तक हैं। इनके कुल में आगे जो विशेष प्रसिद्ध ऋषि हुए, उनके नाम गोत्र में और जोड़ दिये गये। यहाँ एक और बात कहने लायक़ है। सूर्यवंशी और चन्द्रवंशी क्षत्रियों की दी गई वंशावली में इन गोत्र-प्रवर्तकों के नाम नहीं हैं। इसके सिवा कुछ ब्राह्मणों ने कुल चन्द्रवंशी क्षत्रियों से उपजे हैं। उनका सम्बन्ध ऊपरवाले गोत्रों से कैसे जुड़ता है? ऊपर के अवतरण से यह बात सिद्ध होती है कि आजकल जो गोत्र परम्परा है वह और उसके उपयोग की प्रवृत्ति महाभारत काल से पूर्व की है।

(२) आश्रम-व्यवस्था

वर्णव्यवस्था जिस प्रकार भारतीय आर्यों के समाज का एक महत्त्व का अंग है, उसी प्रकार आश्रमव्यवस्था भी है। आर्यों ने इसको भी अपने समाज में स्थिर किया और आश्रमव्यवस्था धर्म की बात हो गई। यह व्यवस्था तीन वर्णों के ही लिए थी। आर्यों ने अपने समाज को उन्नत अवस्था में पहुँचाने के लिए जो यत्न किये, उन्हीं के फल ये आश्रम हैं। आरम्भ में यह व्यवस्था यद्यपि अत्यन्त लाभदायक हुई, तथापि आध्यात्मिक सामर्थ्य के घटते रहने से आश्रम-व्यवस्था में धीरे धीरे न्यूनता आ गई।

आश्रम चार हैं—*ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ* और *सन्यास*। सात आठ साल की अवस्था में लड़के का उपनयन-संस्कार द्वारा पहले आश्रम में प्रवेश होता है। इस आश्रम में गुरु के घर रहकर विद्या पढ़नी पड़ती है। बारह वर्ष के अनन्तर गुरु की आज्ञा से ब्रह्मचारी के गृहस्थाश्रम स्वीकार करने का नियम था। गृहस्थाश्रमी विवाह करके अपनी गृहस्थी सँभाले और अग्नि तथा अतिथि की सेवा करके कुटुम्ब का पालन करे। गृहस्थाश्रम सम्पूर्ण कर बाल बच्चों को गृहस्थी सौंपकर आप वन में चला जाय और वहाँ चौथे आश्रम में जाने के लिए धीरे-धीरे तैयार होता रहे। यों परमेश्वर

मुख्य भाग (गुरु के घर रहना) उस काल में घट गया था। धीरे-धीरे क्षत्रियों और वैश्यों में महाभारत के समय आजकल की तरह सिर्फ़ उपनयन संस्कार रह गया होगा।

गृहस्थाश्रम की मुख्य विधि विवाह है, जिसका लुप्त होना कभी सम्भव नहीं। किन्तु उसका दूसरा मुख्य भाग था अग्नि की सेवा करना। इस काम को ब्राह्मण लोग बहुधा किया करते थे, क्षत्रिय भी करते थे। महाभारत में लिखा है कि जब श्रीकृष्ण समझौता करने के लिए गये तब विदुर के घर सबेरे नहा-धोकर उन्होंने जप किया और अग्नि में आहुति दी। (उद्यो० अ० ६४) वसुदेव का देहान्त होने पर उनका क्रिया-कर्म करते समय रथ के आगे अश्वमेध-सम्बन्धी छत्र और प्रदीप्त अग्नि पहुँचाये गये थे। इसी प्रकार पाण्डव जब वनवास में थे तब उनकी गृहाग्नि का सेवन नित्य होते रहने का वर्णन है। सारांश यह कि भारती युद्ध के समय सभी क्षत्रिय गृहाग्नि रखते थे। अब रह गया गृहस्थाश्रम का तीसरा अंग अतिथि-सेवा, सो इसे सभी करते थे। वानप्रस्थ का अधिकार तीनों वर्णों को था। धृतराष्ट्र अपनी पत्नी और कुन्ती के साथ वन में तप करने गये थे। महाभारत से यह स्पष्ट नहीं होता कि शूद्र को वानप्रस्थ की मनाही थी। राजा की आज्ञा से शूद्र को सभी आश्रमों का अधिकार है। (शान्तिपर्व, ६३वाँ अध्याय)

प्राचीन काल से ही सन्यासाश्रम भारतीय आर्य समाज का विशेष अलङ्कार रहा है। आरम्भ में इस आश्रम का अधिकार तीनों वर्णों को था। सन्यास लेने का अधिकार ब्राह्मणों को ही है। (शान्ति-पर्व ६१वाँ अध्याय) शूद्र भी तीन वर्णों की योग्यता का ही है और उसके लिए सब आश्रम विहित हैं। (शां० अ० ६३) महाभारत के समय तक यह नियम न हुआ था कि सन्यास का अधिकारी ब्राह्मण वर्ण ही है। उस समय अनेक ब्राह्मण सन्यासी सन्यास के विशेष धर्म का पालन करते थे, किन्तु अन्य वर्णों के लोग योग्य रीति से

सन्यास ग्रहण न कर उसका वेष बना लेते थे। कितने ही शूद्र गुजर करने के लिए भिक्षा माँगते थे। इसी से अन्य वर्णवालों के लिए सन्यास की मनाही कर दी गई होगी। महाभारत के समय में सैकड़ों सन्यासी वन में रहकर तत्त्व विवेचन किया करते थे। सिकन्दर को पञ्जाब में ऐसे अनेक तत्त्ववेत्ता मिले थे जो परमहंस रूप में जङ्गल में रहते थे। सन्यासाश्रमी को जिन जिन धर्मों का पालन करना आवश्यक था उनके सम्बन्ध में सूक्ष्म नियम पहले से ही मौजूद थे (अनुगीता आश्व० अ० ४६)। उनमें से अधिकांश का बौद्ध सन्यासियों ने त्याग कर दिया, जिससे उनकी आगे चलकर अवनति हो गई।

अवश्य करना चाहिए और इसके लिए उस समय उपनयन-संस्कार धर्म के अन्तर्गत कर दिया गया था। यह शिक्षा मुख्यतः धार्मिक होती थी सही, किन्तु अन्य विद्याएँ भी पढ़ाई जाती थीं। साधारण रूप से सभी तरह की शिक्षा एक ही गुरु के घर मिल जाने का प्रबन्ध था। इस प्रकार की शिक्षा के लिए कम से कम बारह वर्ष लगते थे। जब तक लड़का विद्या पढ़ता था तब तक उसका विवाह न होता था। गुरु के घर जाना और विद्या समाप्त कर गुरु-गृह से लौटना धार्मिक विधि के कृत्य थे। गुरु की आज्ञा मिल जाने पर समावर्तन-संस्कार (गुरु गृह से लौटना) किया जाता था। सभी विद्यार्थियों के लिए गुरु के घर काम करना अनिवार्य था। कुछ गुरु शिष्यों को सताते रहे होंगे। धौम्य ऋषि वेद नामक शिष्य को हल में जोतता था (आदिपर्व अध्याय ३)। गुरु को सन्तुष्ट रखकर विद्या पढ़ी जाती थी। उस काल में न केवल गुरु का, प्रत्युत गुरु-पुत्र और गुरु-पत्नी का भी खूब आदर था। पढ़ाई सम्पूर्ण हो जाने पर गुरु को दक्षिणा देने की भी रीति थी। साधारण रूप से दो गौएँ दी जाती थीं। कुछ गुरु तो बिना दक्षिणा लिये ही शिष्य को घर जाने देते थे। दक्षिणा की अनेक असम्भाव्य कथाएँ महाभारत में हैं। उनसे जान पड़ता है कि वे बहुधा शिष्यों की ऐंठ से ही हुई हैं। आदिपर्व में उत्तङ्क की और उद्योगपर्व में गालव की ऐसी ही कथा है।

अनुमान होता है कि एक गुरु के घर बहुत करके चार-पाँच विद्यार्थी रहते थे। प्राचीन काल में बिना गुरु के विद्या पढ़ने का रिवाज न था। यवक्रीत ने बिना गुरु के वेदों का अध्ययन किया था। (वनपर्व अ० १३८) इससे अनुमान होता है कि उस समय वेदों की पुस्तकें रही होंगी; क्योंकि गुरु के बिना वेदों का अध्ययन पुस्तकों से ही हो सकता है। शूद्रों को वेद-विद्या का अधिकार न था। किन्तु जान पड़ता है कि शूद्र विद्यार्थी अन्य विद्याएँ सीखने के लिए आते होंगे।

तो भारतीकाल में वर्तमान विश्वविद्यालयों ऐसी संस्थाएँ थीं या नहीं ? महाभारत के आदिपर्व में कण्व कुलपति के आश्रम का वर्णन है। उससे इस ढङ्ग के विद्यालय की कल्पना होती है। जहाँ कौरवों पाण्डवों के सदृश अनेक विद्यार्थी एक ही जगह रहते होंगे, वहाँ सबको गुरु के घर न भेजकर कोई न कोई शिक्षक नियुक्त कर लेने की रीति रही होगी। गुरु के पद पर द्रोण की योजना हस्तिनापुर में कर लेने का वर्णन है। स्पष्ट है कि यह बात परिपाटी के विरुद्ध हुई थी। क्षत्रियों को धनुर्विद्या और राजनीति अथवा दण्डनीति ब्राह्मण ही सिखाते थे। वैश्यों को भी वार्ताशास्त्र अथवा शिल्प का ज्ञान ब्राह्मण गुरुओं से ही मिलता था। भिन्न भिन्न विद्याएँ—ज्योतिष, और वैद्यक आदि ब्राह्मण ही पढते और पढाते थे। भिन्न भिन्न विद्याओं की परीक्षाओं में उत्तीर्ण छात्रों को राजा का पुरस्कार देता था। इससे छात्रों को उत्साह मिलता था।

महाभारत में द्रौपदी के लिए पण्डिता शब्द का प्रयोग है। इससे ज्ञात होता है कि उच्च वर्णों की स्त्रियों को शिक्षा देने की प्रथा थी परन्तु वेद पढाने के लिए उनके उपनयन आदि होने का कहीं वर्णन नहीं है। इससे स्त्रियों की शिक्षा इतनी ही होगी कि मामूली लिखना पढना सीखकर वे कुछ धार्मिक ग्रन्थों को पढ सकें। क्षत्राणियों को ललित कलाओं की भी शिक्षा दी जाती थी। विराट की कन्या उत्तरा को गीत, नृत्य और वादित्र सिखलाने के लिए बृहन्नला को नियुक्त किया गया था। उत्तरा के साथ महलों की और बाहर की भी कुछ क्वाँरी कन्याएँ शिक्षा प्राप्त करती थीं।

सातवाँ प्रकरण

विवाह-संस्था

हिन्दू-समाज का दूसरा महत्त्व का अंग विवाह-संस्था है। सभी समाजों की उत्क्रान्ति के इतिहास में एक ऐसा समय अवश्य होना चाहिए जब समाज में विवाह का बन्धन बिलकुल ही न हो। महाभारत में एक स्थान पर लिखा है कि किसी समय भारतीय समाज की परिस्थिति ऐसी ही थी। विवाह की मर्यादा उद्दालक ऋषि के पुत्र श्वेतकेतु ने स्थापित की। उसकी माता का हाथ एक ऋषि ने पकड़ लिया था, इससे उसको क्रोध आ गया। तभी उसने विवाह की मर्यादा निश्चित की कि जो स्त्री पति को छोड़ अन्य पुरुष से सम्बन्ध स्थापित करेगी उसे भ्रूण-हत्या का पातक लगेगा और जो पुरुष अपनी स्त्री को छोड़कर अन्य स्त्री से सम्बन्ध स्थापित करेगा उसे भी वही पाप लगेगा। (आदिपर्व अ० १२२) इस कथा से पाठक समझ सकेंगे कि भारतीय आर्यों में विवाह की पवित्रता की नींव प्रारम्भ से ही है।

भारतीय आर्यों में नियोग की रीति प्राचीन काल में रही होगी। समाज का बल मनुष्य-संख्या पर अवलम्बित था, इस कारण प्राचीन काल में पुत्र का मान भी बहुत था। बहुधा अपने कुटुम्बी पुरुष से ही नियोग करने की आज्ञा स्त्रियों को थी और सो भी तभी तक जब तक पुत्र-प्राप्ति न हो। नियोग की अनुमति तभी थी जब पति किसी कारण असमर्थ हो गया हो या मर गया हो और उसके पुत्र न हो। नियोग के ही द्वारा धृतराष्ट्र और पाण्डु की उत्पत्ति होने की कथा महाभारत में है; और पाण्डु के भी नियोग के द्वारा धर्म, भीम आदि पुत्र होने का वर्णन है। परन्तु यह प्रथा शीघ्र बन्द हो गई होगी। भारतीय आर्यों में स्त्रियों के पातिव्रत के सम्बन्ध में जो अत्यन्त गौरव उत्पन्न हो गया उसके कारण नियोग की रीति निन्द्य प्रतीत होने लगी होगी। इस कारण यह उत्तरोत्तर बन्द होती गई। महाभारत के समय उसका चलन

बिलकुल न था। महाभारत के अनेक उदाहरणों और कथानकों से आर्य स्त्रियों के पातिव्रत्य के सम्बन्ध में हमारे मन पर आदर की अमिट छाप लग जाती है। द्रौपदी, सीता, दमयन्ती आदि अनेक पतिव्रताओं के सुन्दर चरित्र हजारों वर्ष से हम हिन्दुओं की ललनाओं की नजरों में महाभारत की कृपा से घूम रहे हैं।

पुनर्विवाह की रोक—पातिव्रत की उच्च कल्पना से पुनर्विवाह की रीति भी त्रैवर्णिक आर्यों में बन्द हो गई। सिकन्दर के साथ के इतिहासकार लिख गये हैं कि पंजाब के आर्यों में पुनर्विवाह का रीति नहीं है। महाभारत की एक कथा में इस मनाही का उद्गम है। कथा यों है—अन्धे दीर्घतमा ऋषि की स्त्री का नाम प्रद्वषी था। वह ऋषि के लिए काम करते करते ऊबकर उन्हें छोड़कर जाने लगी। तब ऋषि ने कहा कि मैं ऐसी मर्यादा बनाता हूँ कि स्त्री दूसरा पति कर ही न सकेगी। दीर्घतमा वैदिक ऋषि हैं, अतएव यह बन्धन बहुत प्राचीन होगा।

प्रश्न होता है कि यदि यह बन्धन प्राचीन काल से था तो दमयन्ती दूसरा विवाह करने को क्योंकर तैयार हो गई थी। दमयन्ती से भेंट होने पर नल ने आँखों में आँसू भरकर प्रश्न किया—भर्ता के लिए अनुव्रत रही हुई कौन स्त्री दूसरे पुरुष से विवाह करेगी? तेरे दूत पृथ्वी पर कहते फिरते हैं कि दमयन्ती दूसरा विवाह करेगी। दमयन्ती ने कहा—तुम्हें यहाँ बुलाने के लिए इस युक्ति से काम लिया है। मैं तुम्हारे चरणों की सौगन्ध खाकर कहती हूँ कि मैंने मन में कोई बुरा बात नहीं सोची है। अर्थात् उस समय आर्य क्षत्रिय स्त्रियों का पुनर्विवाह न होता था। पुनर्विवाह की मनाही का और भी एक कारण है। भारती आर्यों में यह शर्त थी कि विवाह के समय वधू 'कन्या' होना चाहिए। महाभारत में स्पष्ट कह दिया है कि भुक्तपूर्वा स्त्री को ब्याहना पातक है।

प्रौढ़ विवाह—महाभारत में विवाह के जितने वर्णन हैं सभी में विवाह के समय कन्याएँ प्रौढ़ दशा की हैं। स्वयंवर के समय द्रौपदी । ` वर्णन है उससे यह स्पष्ट है। सुभद्राहरण के समय सुभद्रा की

अवस्था पूरी हो चुकी थी। उत्तरा का भी ऐसा ही वर्णन है। ऐसे वर्णनों से जान पडता है कि प्राचीन समय में विवाह के समय स्त्रियाँ बालिग़ रहती थीं।

कन्यात्व का भङ्ग करना पातक माना जाता था। महाभारत में लिखा है कि जो कन्या अपने कौमार्य मे बट्टा लगावेगी उसे ब्रह्महत्या का तीन चौथाई पातक लगेगा और शेष पातक उस पुरुष को लगेगा जिसने कौमार्य को दूषित किया हो। इससे प्रकट है कि प्रौढ लडकियों के कौमार्य की रक्षा का प्राचीन काल में कितना ध्यान रक्खा जाता था।

साधारण रीति मे लडकी के दान करने का अधिकार बाप को था। नियम था कि ऋतुकाल प्राप्त होने पर लडकी तीन साल तक प्रतीक्षा करे कि बाप मुझे प्रदान करता है या नहीं। यदि वह प्रदान न करे तो कन्या स्वय अपना विवाह कर ले (अनुशासनपर्व)। भारतीय आर्यों की भावना के अनुसार प्रत्येक स्त्री का विवाह आवश्यक था।

अनेकपत्नी विवाह—वैदिक काल से लेकर महाभारत के समय तक पुरुष अनेक स्त्रियाँ ग्रहण कर सकते थे। वेद में स्पष्ट कहा गया है कि एक पुरुष अनेक स्त्रियाँ ग्रहण कर सकता है। महाभारत में वर्णन है कि पाँचों पाण्डवों के द्रौपदी को छोड़ और भी कई स्त्रियाँ थीं। श्रीकृष्ण की आठ पटरानियों के सिवा अनेक भार्याएँ थीं। महाभारत में श्रीकृष्ण की सोलह हजार स्त्रियों का दो-तीन जगह उल्लेख है। इस सख्या में अतिशयोक्ति है।

एक स्त्री के अनेक पति—एक स्त्री के अनेक पति करने की प्रथा शुरू शुरू में उन चन्द्रवंशी आर्यों में थी जो हिमालय से नये-नये आये थे। वे अनेक पति एक ही कुटुम्ब के सग भाई होते थे। भारतीय आर्यों का मत पहले से ही इस प्रथा के प्रतिकूल था। महाभारत के समय भारतीय आर्यों में यह बिलकुल न थी। महाभारतकार के लिए एक द्रौपदी का पाँच पाण्डवों की स्त्री होना एक पहेली ही था और इसका निराकरण करने के लिए उसने महाभारत में दो तीन कथाएँ मिला दी हैं।

विवाह के भेद—महाभारत (आ० अ० ७४) में विवाह के आठ भेद वर्णित हैं—ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, आसुर, गान्धर्व, राक्षस और पैशाच। दैव और आर्ष का अन्तर्भाव ब्राह्म में ही होता है। इनमें कन्यादान ही है। पैशाच तो नाम का ही विवाह भेद है। विवाह के मुख्य भेद पाँच ही हैं। अनुशासनपर्व के ४४वें अध्याय में ब्राह्म, क्षात्र, गान्धर्व, आसुर और राक्षस यही पाँच भेद बतलाये भी हैं। इनमें तीन तो प्रशस्त और दो अप्रशस्त माने जाते थे। सबसे कनिष्ठ राक्षस विवाह है। इस विवाह का अर्थ बलपूर्वक लड़की ले आना है। इससे उच्च है आसुर (लड़की को मोल लेना)। आसुर से श्रेष्ठ गान्धर्व है (लड़की की इच्छा से विवाह करना)। इससे श्रेष्ठ क्षात्र विवाह है, जिसमें प्रण जीतनेवाले को लड़की का बाप लड़की दे। सबसे श्रेष्ठ ब्राह्म है जिसे सत्कार पूर्वक कन्यादान कहना अयुक्त नहीं है।

ब्राह्म, क्षात्र और गान्धर्व—ब्राह्मणों के लिए ब्राह्म विवाह योग्य कहा गया है। (अनुशासनपर्व अ० ४४) कन्या का पिता वर को बुलाकर सत्कार पूर्वक धनदानादि से अनुकूल करके उसे कन्या दे। कन्या के पिता को इसमें वर की प्रार्थना करनी होती है। दूसरा भेद क्षात्र है। किन्तु इस बात का खुलासा नहीं किया गया है कि यह होता किस तरह था। हमारी समझ में शर्त बदना और तदनुसार जीतनेवाले को बेटी ब्याहना क्षात्र विवाह है। क्षात्र विवाह ब्राह्मण और क्षत्रिय के लिए विहित था। विवाह का तीसरा भेद गान्धर्व है। इसमें लड़की अपनी इच्छा से वर को पसन्द कर लेती थी। ऐसे विवाह गन्धर्वों में होते थे। स्वयंवर का भेद गान्धर्व-विधि में ही शामिल है। यह विवाह भारतीय आर्यों में महाभारत के समय तक प्रचलित था। यूनानी इतिहासकारों ने लिखा है कि पञ्जाब के कठ क्षत्रियों की स्त्रियाँ अपना वर स्वयं पसन्द करती हैं।

आसुर—इस विवाह में कन्या मोल ली जाती थी। लिखा है—कन्या के आप्त लोगों को और कन्या को भी धन देकर मोल ले ले,

प्रौर तब उसके साथ विवाह करे। पञ्जाब की कुछ जातियों में आसुर विवाह होते थे। पाण्डु राजा का दूसरा विवाह करने के लिए भीष्म शल्य के यहाँ जाकर उन्हें सोने के जेवर, रत्न हाथी घोड़े और कपड़े आदि देकर माद्री को ले आये थे। यूनानी इतिहासकारों ने तक्षशिला में युवती कन्याओं की बिक्री का उल्लेख किया है। आजकल कुछ जातियों में आसुर विवाह प्रचलित है पर उसे लोग अप्रशस्त ही मानते हैं।

राक्षस—यह विवाह का पाँचवाँ भेद है। इसमें कन्यापक्षवालों से लड़कर जबर्दस्ती लडकी छीन लाते थे। महाभारत में इसके प्रसिद्ध उदाहरण हैं सुभद्रा और काशिराज की बेटियों के विवाह। विवाहिता स्त्री तक को हरण कर ले भागने के उदाहरण पूर्व समय में मिलते हैं, जैसे वनपर्व में जयद्रथ द्वारा द्रौपदी का हरण किया जाना। स्मृतियों ने क्षत्रियों के लिए राक्षस विवाह विशेष रूप से योग्य बतलाया है। आजकल भी क्षत्रियों में और उनके नीचेवाली जातियों में विवाह के अवसर पर दूलह के हाथ में कटार या छुरी रखने की रीति राक्षस विवाह की याद दिलाती है।

ये भिन्न भिन्न विवाह भारतीय आर्यों में एक साथ जारी थे, तथापि अन्त में पति पत्नी का विवाह बहुधा ब्राह्मविधि से ही किया जाता था। सुभद्रा हरण हो चुकने पर अर्जुन और सुभद्रा द्वारका को लौटाये गये जहाँ ब्राह्मविधि से उनका विवाह हुआ। अर्जुन के द्रौपदी को जीत लेने पर और अपने घर ले जाने पर भी द्रुपद ने दोनों को अपने यहाँ बुलाकर विधिपूर्वक विवाह किया। प्राय सभी विवाहों में ब्राह्मविधि (दान) की प्रथा थी। विवाह म अग्नि के समक्ष पति पत्नी जो सात फेरे करते हैं, उसका नाम सप्तपदी है। उस विधि का एक मुख्य अङ्ग पाणिग्रहण सस्कार है (अनुशासनपर्व)।

पति पत्नी का सम्बन्ध—महाभारत के समय गृहस्थी में स्त्रियों को विशेष स्वतन्त्रता थी। द्रौपदी विवाह के समय बड़ी थी। वह स्वयवर में बेधड़क चली आई और लक्ष्य बेधने को कर्ण धनुष उठाने

लगा तो उसने कड़ककर कहा—मैं सूत से विवाह नहीं करूँगी। उसे धर्मशास्त्र का अच्छा परिचय था। द्यूत के अवसर पर उसने सभा से ऐसा प्रश्न किया जिसका उत्तर भीष्म से भी देते न बना। वह पतियों के साथ बेखटके वन को चली गई। उसने अपने पातिव्रत को बचाकर विराट के घर की कठिनाइयाँ झेल लीं।

द्रौपदी के ही मुख से (वन० अ० २३३) में वर्णन कराया गया है कि उत्तम पत्नी का आचरण कैसा होना चाहिए। वह सदा पाण्डवों के सुख दुःख की सहभागिनी दिखलाई गई है। प्राचीन काल से ही भारतीय आर्य स्त्रियों के आचरण के सम्बन्ध में अत्यन्त उदात्त कल्पना है। महाभारत के समय आर्य स्त्रियों का पति प्रेम अवर्णनीय था और पति पत्नी के सम्बन्ध का दर्जा बहुत ऊँचा था।

यूनानी इतिहासकारों ने भारतीय स्त्रियों के सद्गुणों के विषय में कुछ उलटा मत प्रकट किया है, पर वह सच नहीं है। उससे भारतीय स्त्रियों के पातिव्रत के उच्च स्वरूप को तनिक भी क्षति नहीं पहुँचती। महाभारत कर्णपर्व में शल्य और कर्ण के कथोपकथन में, कर्णकृत वाहीक और मद्र स्त्रियों की निन्दा यद्यपि अतिशयोक्ति से भरी हुई है फिर भी उसमें जो थोड़ा सत्यांश है, उससे पता चलता है कि कदाचित् पञ्जाब में वैसी अवस्था रही हो। उसी को यूनानियों ने सारे भारत के लिए मान लिया होगा।

सती प्रथा—सती की प्रथा भारतीय आर्यों को छोड़ अन्य किसी जाति में प्रचलित नहीं देख पड़ती। हिन्दुस्तान में यह प्रथा प्राचीन काल से लेकर महाभारत के समय तक प्रचलित देख पड़ती है। यूनानी इतिहासकारों ने भी इसको लिख छोड़ा है। पञ्जाब के कुछ लोगों के सम्बन्ध में उन्होंने लिखा है कि इनकी स्त्रियाँ पति की चिता पर अपनी खुशी से जलकर मर जाती हैं। इससे प्रकट है कि सिकन्दर के पहले भारत में सती की प्रथा थी। महाभारत में भी पाण्डु के साथ माद्री के सती हो जाने का और इन्द्रप्रस्थ में श्रीकृष्ण,

ों कितनी ही स्त्रियों के सती हो जाने का वर्णन है। भारत में यह प्रथा अँगरेज़ी-राज्य के आरम्भ तक थी।

पर्दा—महाभारत के कई एक वर्णनों से यह अनुमान होता है कि क्षत्रिय राजाओं में महाभारत के समय पर्दा रहा होगा। महाभारत के समय पर्दे की प्रथा थी। यूनानी इतिहासकारों के विवरण और कथासरित्सागर में नन्दों के अन्त:पुर के वर्णन से प्रकट होता है कि राजाओं की स्त्रियाँ पर्दे में इस तरह रक्खी जाती थीं कि उनके नख देवता तक न देख सकें। परन्तु जान पड़ता है कि आरम्भ से भारतीय आर्य क्षत्रियों में यह रीति नहीं थी। सुभद्रा रैवतक पर्वत पर यादव स्त्रियों के साथ उत्सव में घूमती-फिरती थी, वहीं उसे अर्जुन ने देखा था। वनवास में द्रौपदी पाण्डवों के साथ थी। जयद्रथ ने उसे दरवाज़े पर खड़ी देखकर हरण करने का प्रयत्न किया था। स्त्रीपर्व अध्याय १० से ज्ञात होता है कि विधवाएँ बाहर निकल सकती थीं और सौभाग्यवती को उत्तरीय धारण करना पड़ता था। कालिदास ने शकुन्तला को उत्तरीय के सिवा एक लम्बी चादर उढ़ा दी है परन्तु महाभारत की शकुन्तला, ब्राह्मणी की भाँति अवगुण्ठन रहित थी। ऐसे ऐसे उदाहरणों से हमारा मत है कि भारती युद्ध के समय पर्दे का बन्धन न था।

दूसरे बन्धन—भारतीय आर्यों में यह सामाजिक बन्धन विशेष रूप से देख पड़ता है कि विवाह हो तो एक ही जाति में, परन्तु एक ही गोत्र में नहीं। महाभारत के समय यह भी मनाही थी कि एक ही प्रवर में बेटी-व्यवहार नहीं किया जा सकता। सगोत्र के सिवा मातृसम्बन्ध से पाँच पीढ़ियों तक विवाह वर्ज्य है। यह वर्तमान स्मृतिशास्त्र का नियम है। अब देखना चाहिए कि भारतीय आर्यों में यह नियम कहाँ तक प्रचलित था। चन्द्रवंशी आर्यों में इस नियम की पाबन्दी न थी। आजकल विवाह के लिए मामा की बेटी वर्ज्य है परन्तु पाण्डवों के समय चन्द्रवंशी क्षत्रियों में इसकी

मनाही न थी। श्रीकृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न का विवाह उसके मामा रुक्म की बेटी के साथ हुआ था। प्रद्युम्न के पुत्र अनिरुद्ध का विवाह उसकी ममेरी बहन के साथ हुआ था।

महाभारत के समय विवाह के सम्बन्ध में एक नियम यह देख पड़ता है कि बड़े भाई का विवाह हुए बिना छोटे का न हो। हाँ स्त्रियों को यह दोष नहीं लगता। बड़ी बहन का विवाह होने के पहले यदि छोटी ब्याह दी जाय तो वह दोषी नहीं। शायद यह अभिप्राय रहा हो कि स्त्रियों को जब उत्तम वर मिले तभी उनका विवाह कर दे

आठवाँ प्रकरण

सामाजिक परिस्थिति

(१) अन्न

भारती काल के प्रारम्भ में (भारती युद्ध के समय) और अन्त में अर्थात् महाभारत के समय भारती आर्यों की भिन्न भिन्न बातों में बहुत अन्तर देख पड़ता है। भोजन के सम्बन्ध में इन समयों में उनकी परिस्थिति में अन्तर पड़ गया था। प्राचीन वैदिक ऋषि यज्ञ के पक्के पुरस्कर्ता थे। वैदिक क्षत्रिय भी यज्ञ करते थे जो हिंसा युक्त होते थे। यज्ञों में तरह-तरह के पशु मारे जाते थे और उनके मांस का हवन होता था। अर्थात् साधारण रीति से प्राचीन समय में जैसे सभी देशों के लोग मांस खाते थे वैसे ही भारतीय आर्य भी खाते थे। यज्ञों का दर्जा गवालम्भ और अश्वालम्भ तक पहुँच गया था। और तो और, पुरुष मेध तक यज्ञों की श्रेणी पहुँच गई थी। अश्वमेध समस्त यज्ञों में श्रेष्ठ माना जाता था। इसके करने में एक तरह का राजकीय ऐश्वर्य व्यक्त होता था। इस कारण समर्थ क्षत्रिय अश्वमेध किया करते थे। सार्वभौम राजा राजसूय यज्ञ करते थे। महाभारत में वर्णित है कि पाण्डवों,

। ये दोनों यज्ञ किये थे। युधिष्ठिर के यज्ञ में हवन के लिए अनेक पशु पक्षी मारे गये। अश्वमेध यज्ञ में 'खाण्डव राग' पक्वान्न बनाने में बहुत आदमी लगे थे और अगणित पशु मारे जाते थे। (अश्व० अ० ८९) मय सभागृह में प्रवेश करते समय दस हजार ब्राह्मणों को भोजन कराया गया। उस समय धर्मराज ने उत्तम-उत्तम कन्द मूल और फल, वराहों और हिरनों के मास घी, शहद, तिल मिश्रित पदार्थ और तरह तरह के मासों से उनको सन्तुष्ट किया। (सभापर्व अ० ४)।

परन्तु महाभारत के समय (सौति के समय) भारतीय आर्यों की स्थिति बहुत भिन्न हो गई थी। विशेषत ब्राह्मणों ने मासाहार छोड दिया था। इसके सिवा बौद्ध, जैन और भागवत मत का चलन हो जाने से सर्वसाधारण में अहिंसा का दर्जा बढ गया था और इन लोगों में मास निवृत्ति की बहुत प्रगति हो गई थी।

परन्तु क्षत्रियों की पुरानी रीतियों को बदल डालना कठिन था। अश्वमेध पर उनकी प्रीति ज्यों की त्यों थी और मासाहार का दस्तूर था। उच्च ब्राह्मण वैदिक कर्म छोडने को तैयार न थे और इस काम मे क्षत्रियों के सहायक बनकर कहते थे कि वेदोक्त पशुवध से हिंसा नहीं होती। इस विषय में भारती काल में बहुत विवाद हुए। जान पडता है कि महाभारत के समय यज्ञ में हुई हिंसा हिंसा न मानी जाती थी और वह सिद्धान्त अब तक मान्य है। यह सच है कि इस समय यज्ञ बहुत कम होते हैं, परन्तु पशु हिंसा का आग्रह नहीं छूटा है। महाभारत के समय हिंसा प्रयुक्त यज्ञ हुआ करते थे और क्षत्रिय मासाहारी थे। अनेक ब्राह्मण भी मासाहारी थे। परन्तु अन्य लोगों में मासाहार का चलन कम था। भागवत और जैन आदि सम्प्रदायों म मास खाने का रवाज बिलकुल न था। कर्णपर्व के हसकाकीय कथानक के एक उल्लेख से जान पडता है कि कहीं कहीं वैश्य मांस खाते थे।

महाभारत के समय गवालम्भ बन्द हो गया था। कलियुग में गाय बैल का यज्ञ वर्ज्य कर दिया गया था। उस समय गोवध अथवा

गोमांस अत्यन्त निन्द्य समझा जाता था (द्रोणपर्व अ० ७३)। गाय को लात मारना तक पाप माना जाता था। किन्तु भारती युद्ध के समय दूसरी बात थी। रन्तिदेव के यज्ञों में मारे हुए बैलों के चमड़े की ढेरी से बहनेवाली नदी का नाम चर्मण्वती पड़ गया था। यूनानियों ने लिखा है कि हिन्दुस्तानी लोग प्रायः शाकाहारी हैं। अरायन लिखता है—यहाँवाले जमीन जोतते और अनाज पर गुजर करते हैं। सिर्फ़ पहाड़ी देश के लोग जङ्गली जानवरों का शिकार कर मांस खाते हैं। इससे सिद्ध है कि गाय अथवा बैल का वध पहाड़ी लोगों में भी निषिद्ध था। कर्ण और शल्य के सवाद में कहा गया है कि (वाहिक देश के) राजमहलों के आगे गोमांस की दूकानें हैं और यहाँवाले गोमांस, लहसुन, मांस मिली हुई पीठी के बड़े तथा भात खरीदकर खाते हैं (क० अ० ४४)। इससे माना जा सकता है कि पञ्जाब में महाभारत के समय यह अनाचार जारी था।

यह महत्त्वपूर्ण निषेध क्यों हुआ? महाभारत में सप्तर्षियों और नहुष के बीच झगड़ा होने का वर्णन है। ऋषियों ने कहा—ऋषियों के मत से गवालम्भ वेद में वर्णित होने के कारण प्रमाण है। परन्तु नहुष ने उसे नहीं माना (उ० अ० १७)। इससे यह ऐतिहासिक अनुमान होता है कि गौ यज्ञ का साधन होने के कारण उसका यज्ञ वर्ज्य है और पहले यह व्यवस्था नहुष ने की जो उस समय चल न सकी। यह व्यवस्था आगे चलकर कृष्ण की भक्ति के कारण मान्य हो गई होगी। श्रीकृष्ण यादव थे और यादव गोपालक थे। श्रीकृष्ण को गौएँ बहुत प्रिय थीं। अतएव गौओं के सम्बन्ध में पूज्य भाव उत्पन्न होकर गवालम्भ बन्द हो गया। नहुष के झगड़े से चन्द्रवंशी क्षत्रियों में इस निषेध का उद्गम देख पड़ता है। इसी वंश में श्रीकृष्ण हुए। जैन अथवा बौद्ध धर्म के उपदेश से इस निषेध का चलन नहीं माना जा सकता।

यज्ञिय और मृगया की हिंसा—उस समय भी क्षत्रियों को मृगों और वराहों का मांस प्रिय था। इन्हीं को मेध्य पशु कहते हैं। इनका

मास पवित्र माना जाता था। शिकार किये पशु का मास पवित्र माना जाता था। कुछ पशुओं का मांस वर्जित भी है। जिन जानवरों के पाँच नख होते हैं वे ब्राह्मण-क्षत्रियों के लिए वर्ज्य हैं। इनमें साही, एक और प्रकार की साही, गोह, शशक और कछुवा खाने का निषेध नहीं है। जिन मछलियों के शल्क (पंख) नहीं हैं वे और कछुए तो भक्ष्य हैं, इनके सिवा समस्त जलचर वर्ज्य हैं। भास, हंस, गरुड़, चक्रवाक, कारण्डव, वक, काक, गृध्र, श्येन और उलूक पक्षी वर्ज्य हैं। इस तरह जिनके दंष्ट्रा है ऐसे सभी मास-भक्षक चौपाये और वे पक्षी जिनके नीचे-ऊपर दाढ़ें हैं तथा ऐसे सभी प्राणी जिनके चार दंष्ट्राएँ हैं, वर्ज्य हैं (महाभारत शान्तिपर्व अध्याय १४१–४७)। इससे प्रकट होता है कि महाभारत के समय ब्राह्मण के लिए कौन-कौन से मास वर्ज्य थे। साधारण तौर पर आध्यात्मिक विचार करनेवाले के लिए मास खाना वर्ज्य था। यह नियम था कि गृहस्थ ब्राह्मण तक 'वृथा मास' न खावे। यज्ञ, देवता-सम्बन्धी अवसर अथवा श्राद्ध के अवसर पर शास्त्रोक्त कारण से ही मासान्न खाने की आज्ञा ब्राह्मणों को थी। ब्राह्मणों के यज्ञ और क्षत्रियों की मृगया शास्त्रोक्त हो गई। फिर भी समाज के मत को मान देकर नियम हो गया कि सभी लोग चौमासे भर या कार्तिक महीने भर मास न खायँ।

मद्यपान-निषेध—भारती काल में मद्य के बारे में भी स्थिति बदल गई थी। भारती युद्ध के समय भारतीय आर्य मद्य अथवा सुरा पीना अशास्त्रीय नहीं मानते थे। द्वारका में, यादवों में मद्यपान का ख़ासा जमघट रहता था। बलराम डटकर पीते थे। श्रीकृष्ण और अर्जुन के मद्यपान का वर्णन महाभारत में दो तीन स्थलों पर है। युधिष्ठिर के अश्वमेध के उत्सव-वर्णन में उसे 'सुरा और मैरेय का सागर' कहा है। जयद्रथवधपर्व में धर्मराज की आज्ञा से सात्यकि जब अर्जुन को मदद देने के लिए कौरवों की सेना में घुसने को तैयार हुआ तब उसके सुरापान का वर्णन है। उस समय ब्राह्मणों में भी

सुरासेवी होंगे। शुक्राचार्य शराब पीते थे। उससे अत्यन्त हानि होने के कारण उन्होंने उसे छोड़ दिया था। भारती युद्ध के समय क्षत्रियों की तरह ब्राह्मण भी सुरा पीते थे, यह निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता। ब्राह्मणकाल और उपनिषद् काल में तो सुरापान की गिनती पञ्चमहापातकों में थी। ब्राह्मणों ने निवृत्ति धर्म को प्रधान मानकर मद्य जैसा मोहक और लट्वाक पक्षी के मांस सा मधुर पदार्थ छोड़ दिया था (शान्तिपर्व अ० ३१)। समग्र भारतीयों में, मद्य पीने का व्यसन महाभारत काल में बहुत कम था। मेगास्थिनीज के आधार पर स्ट्रेबो ने लिखा है—हिन्दू लोग यज्ञ के बिना और किसी अवसर पर शराब नहीं पीते। भारतीय आर्यों विशेषत ब्राह्मणों ने मद्य मांस खाना पीना छोड़ दिया था। पञ्जाब को छोड़कर भारत के अन्य प्रान्तों में इस नियम का भली भाँति पालन होता था।

पञ्जाबवालों की तरह और भी एक तरह के लोगों का उल्लेख महाभारत में है, जिनका आचार साधारण धर्मशील ब्राह्मणों से भिन्न था। ये हैं सारस्वत। ब्राह्मणों को मछली न खानी चाहिए, परन्तु महाभारत में इसके अपवाद सारस्वत हैं। ये अब भी मत्स्यभोजी हैं।

चावल प्रभृति अन्न—महाभारत के लोग मुख्य मुख्य अनाज चावल, गेहूँ ज्वार खाते थे। धनवानों और क्षत्रियों में भात में मांस मिलाकर (पुलाव) खाने का रवाज था। सभापर्व में धृतराष्ट्र ने

र्णन नहीं मिलता। भैंस और भैंसे निन्द्य माने जाते थे। कुछ और जानवरों का दूध भी निषिद्ध माना जाता था। कहा गया है कि ब्राह्मण को बकरी, घोड़ी, गदही, ऊँटनी मनुष्य (स्त्री) और हरिणी का दूध न पीना चाहिए। गौ के बच्चा देने पर दस दिन तक उसका दूध न पीना चाहिए।

भोजन—बासी भोजन और पुराना आटा, गन्ना, शाक, दूध और भुने हुए सत्तू से तैयार पदार्थ बहुत दिनों तक रक्खे रहें तो उन्हें न खाना चाहिए (शा० अ० ३६)। शाक भाजी में लहसुन प्याज़ भी वर्ज्य है। समस्त भारतीयों का भोजन परिमित और सादा था। यूनानियों ने लिखा है—भारतीयों में भोजन का नियत समय नहीं है। सारे समाज का प्रसिद्ध भोजन भी नहीं है। कहा गया है कि दिन रात के बीच सिर्फ़ दो बार भोजन करना चाहिए। भोजन करते समय न तो बोलना चाहिए और न रसोई की निन्दा करनी चाहिए (अनु० अ० १०)। युधिष्ठिर के अश्वमेध के अवसर पर हजारों ब्राह्मणों, क्षत्रियों और वैश्यों के भोजन करने का वर्णन है। इससे कहा जा सकता है कि सामाजिक भोज भी होते थे।

भोजन के पदार्थ—भोज के अवसरों पर तरह तरह के स्वादिष्ट पदार्थ बनते रहे होंगे। धृतराष्ट्र को, पहले की ही भाँति, युधिष्ठिर के यहाँ आरालिक, सूपकार और रागखाण्डविक लोग पक्वान्न बना बनाकर परोसते थे। यहाँ तीन तरह के रसोइये बतलाये गये हैं। मीठी चीजें बनानेवाले थे रागखाण्डविक और शाक भाजी, कढ़ी, रायते आदि तैयार करते थे सूपकार (आश्रमवासिक पर्व)।

भोजन के नियम—जिस ब्राह्मण ने यज्ञ की दीक्षा ली हो उसका, कृपण का, यज्ञकर्म बेचनेवाले का, बढ़ईगिरी करनेवाले का, चमड़ा काटनेवाले का और धोबी का काम करनेवाले का अन्न नहीं खाना चाहिए। व्यभिचारिणी, वैद्य, प्रजापालन पर नियुक्त अधिकारी, जन समूह और ग्राम का तथा ऐसे लोगों का अन्न न खाना चाहिए जिनका

लोकापवाद हो। रँगरेज़, स्त्रियों की कमाई खानेवाले, बड़े भाई से पहले विवाह करनेवाले, स्तुतिपाठक और द्यूतवेत्ता का अन्न न खाना चाहिए। बायें हाथ से लिया हुआ, सड़ा-गुसा, बासी, मद्य से छुआया हुआ, जूठा, विशेष व्यक्ति के लिए रक्खा हुआ अन्न न खाना चाहिए। दूध, खीर, खिचड़ी, मांस, बड़े, पुये यदि बिना शास्त्रोक्त कारण के बनाये गये हों तो गृहस्थाश्रमी ब्राह्मण न खावे। मनुष्य और घर के देवता का पूजन करके गृहस्थ भोजन करे। दस दिन से पूर्व उन लोगों का भी पदार्थ न खावे जिनके यहाँ किसी की मृत्यु या वृद्धि हुई हो (शां० अ० ३६)। इस वर्णन से भारतीय आर्यों के खान पान के नियमों का अनुमान किया जा सकता है। *महाभारत के समय ब्राह्मण लोग क्षत्रियों और वैश्यों के यहाँ भोजन किया करते थे, परन्तु शूद्रों के यहाँ भोजन करने नहीं जाते थे।*

(२) पुरुषों की पोशाक—दो वस्त्र

महाभारत के समय भारतीय आर्य पुरुषों की पोशाक बिलकुल सादी—दो धोतियाँ ही—थी। एक धोती कमर के नीचे पहन ली जाती थी, दूसरी चाहे जैसे शरीर पर डाल ली जाती थी। धनवानों की धोतियाँ महीन होती थीं और उनको प्रावार कहते थे। शरीर को ढँकनेवाले उत्तरीय का उल्लेख बहुत कम स्थानों में है। फिर भी यह निर्विवाद है कि पुरुषों के पास उत्तरीय वस्त्र होता था। जान पड़ता है, काटकर कपड़े सीने की कला भारती काल में न थी। महाभारत में दर्ज़ियों का नाम (अ० तुन्नवाय) नहीं है। रामायण में तुन्नवाय शब्द मिलने से जान पड़ता है कि महाभारत के अनन्तर और रामायण के पहले यह कला भारत में आई होगी। महाभारत के बाद बैक्ट्रिया के यूनानियों ने ई० पू० २०० वर्ष के लगभग पञ्जाब को जीतकर वहाँ वर्षों तक राज्य किया। उस समय लोगों ने इस कला को सीखा होगा। भारतीय पुरुषों की पोशाक में दो वस्त्र थे, जिनका नाम अन्तरीय

और उत्तरीय था। इसके सिवा सिर पर उष्णीष (पगड़ी) था (उ० अ० १५३)।

स्त्रियों का पहनावा—पुरुषों की तरह, पर उनके वस्त्रों से लम्बे, स्त्रियों के दो वस्त्र होते थे। आज कल दक्षिणी, बङ्गाली और मदरासी स्त्रियाँ जिस तरह साडी पहनती हैं, उसी ढङ्ग से प्राचीन समय में भारतीय आर्य स्त्रियाँ साड़ी पहनती होंगी। उत्तरीय स्त्रियों का दूसरा वस्त्र था। इसको सिर से ओढ लेने की रीति थी। सयुक्त प्रान्त में अब तक स्त्रियों का उत्तरीय (दुपट्टा) बना है। उन दिनों विधवा स्त्रियों के लिए सफ़ेद और सधवाओं के लिए रङ्गीन उत्तरीय धारण करने का रिवाज जान पडता है। यहाँ यह प्रश्न होता है कि भारतीय आर्य-स्त्रियाँ महाभारत के समय चोली पहनती थीं या नहीं, क्योंकि बिना सिये चोली बन ही नहीं सकती थी।

स्त्रियों की केश-रचना—स्त्रियों के केशों की रचना का नाम सीमन्त (केशों की माँग) था। सौभाग्यवती स्त्रियाँ ही माँग निकालती थीं। बिना कघी किये वैसे ही केश बाँध लेने की रीति विधवाओं के लिए रही होगी। सौभाग्यवती स्त्रियाँ के बालों को कघी करके बीच में माँग से दो भाग करके जूडा बाँधने की रीति थी। वेणी या तो एक होती थी या तीन। जिसका पति दूर होता उसके केशों की इस ढङ्ग की एक वेणी का वर्णन किया जाता था। स्त्रियों की वेणियाँ पीठ पर पडी रहती होंगी। जान पडता है, मजदूर स्त्रियों में वेणी बाँधने की रीति प्राचीन समय में न होगी। द्रौपदी ने सैरन्ध्री का वेष धारण करते समय केशों को इकट्ठा करके एक ओर गाँठ लगाकर दाहनी ओर छिपा लिया (वि० अ० ९)। माँग के बीच केसर अथवा कुकुम भरने की चाल थी। ललाट पर कुकुम लगाने की भी चाल रही होगी।

पुरुषों की पगडी—युद्ध के लिए प्रस्थित भीष्म और द्रोण का जो वर्णन किया गया है उसमें सिर पर सफेद पगडी पहनने का उल्लेख है। ✓ अरायन ने लिखा है—भारतीय लोग एक कपडा कमर के आस-पास

घुटनों से नीचे एँड़ी तक पहनते हैं और एक और कपड़ा लिये रहते जिसे सिर पर लपेट लेते हैं। इस वर्णन में पगड़ी और उत्तरीय एक ही मालूम पड़ता है। कदाचित् ग़रीब लोग इस तरह सिर को लपेट लेते होंगे। राजाओं के मस्तक पर पगड़ी न होती थी। गदायुद्ध में नीचे गिर जाने पर दुर्योधन का मुकुट हिला तक नहीं। मुकुट को जमाकर बैठाने की कुछ व्यवस्था रही होगी।

सूती, रेशमी और ऊनी कपड़े—ओढ़ने, पहनने और सिर में लपेटने के कपड़े सूती होंगे, परन्तु धनिक लोग और स्त्रियाँ रेशमी कपड़े पहनती थीं। महाभारत में स्त्रियों का वर्णन 'पीला रेशम पहननेवाली' आता है। कहीं-कहीं श्रीकृष्ण के पीताम्बर पहने रहने का वर्णन है। जान पड़ता है कि लोग ऊनी कपड़े भी पहनते थे।

वल्कल—वस्त्रों के और भी कुछ भेद थे। ये थे वल्कल और अजिन। इनको वैखानस, योगी अथवा वनवासी मुनि और उनकी पत्नियाँ पहनती थीं। अजिन मृगचर्म से बनते होंगे। वल्कल न जाने किस चीज़ से बनाये जाते थे। जान पड़ता है वल्कल पहनने और अजिन ओढ़ने के काम आता था। यज्ञोपवीत संस्कार में अभी तक लड़के को अजिन के बदले मृगचर्म का एक टुकड़ा जनेऊ के साथ पहनना पड़ता है। शान्तिपर्व के २८८ वें अध्याय में वस्त्रों के नाम आये हैं। इनमें क्षौम, कौशेय और आविक गृहस्थों के वस्त्र हैं और कुशचीर वल्कल तथा चर्म वानप्रस्थ के।

पादत्राण—हिन्दुस्तानी लोग यूनानियों की तरह वैसा (चप्पलनुमा) जूता पहनते थे जैसा दक्षिण में इस समय भी पहना जाता है। अरायन लिखता है—भारतीय लोग चमड़े के कामदार जूते पहनते हैं।

पुरुष का चोटी—ऋषियों के मस्तक पर जटा होने का वर्णन है, किन्तु दाढ़ी के सम्बन्ध में कुछ पता नहीं लगता। तपस्वी लोग बाल नहीं मुड़वाते थे। वे दाढ़ी मूछ भी रखते होंगे। महाभारत में नापितों का उल्लेख है। नहरनी का उल्लेख उपनिषदों में भी मिलता है।

भारतीयों की दाढ़ियों के सम्बन्ध में अरायन कहता है—कुछ लोग दाढ़ी को सफ़ेद रँगते हैं, कुछ लोग नीली, तो कुछ लोग हरी रँगते हैं। चतुर्थ आश्रमी को छोड़कर सभी चोटी रखते हैं। महाभारत के समय क्षत्रिय बहुधा सिर के बाल और श्मश्रु रखते थे। अन्य लोग चोटी छोड़कर सिर के बाल तथा श्मश्रु मुंडा देते थे।

पोशाक की सादगी—महाभारत के समय भारतीय आर्यों की पोशाक बिलकुल सादी थी। उनके वर्तमान वंशधर घर के भीतर और देहात में जिस प्रकार के कपड़े पहने देखे जाते हैं, वही हाल उस समय था। आजकल हिन्दुस्तान में उच्च श्रेणी के लोग जो पोशाक पहनते हैं वह ख़ासकर मुसलमानों की और उससे भी अधिक अँगरेज़ों की नक़ल है।

अलङ्कार—भारतीय आर्यों के अलंकार बहुत ही भिन्न भिन्न रूप के और मूल्यवान् थे। महाभारत के समय पुरुष और स्त्री दोनों ही गहने पहनते थे। यही नहीं, वे गाय, हाथी और घोड़े को भी सुनहरे गहनों से सजाते थे। राजा लोग सोने के रत्नजटित मुकुट पहनते थे। राजा लोग कानों में कुण्डल गले में मोतियों और रत्नों के हार पहनते थे और भुजाओं म केयूर और अगद। धनी लोग कड़े और पहुँची पहनते थ। स्त्रियों के गहने इसी प्रकार के थे। राजाओं की स्त्रियों के मुकुट नहीं, माथे पर बाँधने के लिए सोने की जड़ाऊ पट्टी होती थी। इसी से राजा की प्रधान स्त्री को पटरानी कहते थे। कमर में पहनने के लिए काञ्ची या रशना और पैरों के लिए नूपुर थे। इतिहासकार स्ट्रेबो ने लिखा है—भारतीयों के वस्त्र आदि में यद्यपि बहुत सादगी है, तथापि उन्हें गहनों का बड़ा शौक़ है। वे सुनहरे कलाबत्तू के काम के कपड़े और जड़ाऊ गहने पहनते हैं।

आसन—महाभारत में आसनों का बहुत वर्णन है। ये आसन चौकियों की तरह होते थे। इन पर हाथीदाँत और सोने की नक्क़ाशी की होती थी। द्रौपदी के स्वयंवर में भिन्न-भिन्न मञ्चकों पर राजाओं के बैठने का वर्णन है।

(३) रीति-रिवाज

वेश्य स्त्रियाँ—राजा और धनी लोगों के अनेक स्त्रियों के अतिरिक्त वेश्य स्त्रियाँ होती थीं। ये वेश्याएँ न थीं, एक ही पुरुष की होकर रहती थीं, इस कारण परिवार में इनका मान विवाहित स्त्रियों से कुछ ही उतरकर था। यूनानियों ने लिखा है—राजाओं का ऐश-आराम बेहद बढ़ गया है। राजा जहाँ जाता है, उसके साथ वैश स्त्रियों की कतार की कतार चलती है।

द्यूत—भारतीय क्षत्रियों में द्यूत का शौक इतना बढ़ा-चढ़ा था कि यदि कोई द्यूत खेलने के लिए क्षत्रिय को बुलावे और वह इनकार कर दे तो यह उसके लिए अपमानकारक था। इसी से युधिष्ठिर को द्यूत खेलने के लिए विवश होना पड़ा। बलराम भी खासे जुआड़ी थे।

आचरण—यूनानियों ने लिखा है कि हिन्दुस्तानी लोग व्यवहार में सच्चे, सत्यवक्ता और स्पष्टवादी होते हैं। उनके समस्त जन-समाज में बड़ों का आदर करना महत्त्व का लक्षण था। मनोभाव व्यक्त करने की रीति कई प्रकार की थी। क्रोध के आवेश में दाँत पीसने, होंठ चबाने, या हाथ मलने आदि का वर्णन है। इसी प्रकार आनन्द से एक दूसरे की हथेली पर हथेली बजाना, सिंहनाद करना या वस्त्र उड़ाना आदि बातें भी वर्णित हैं। दुःख में रोने और क्रोध में शपथ लेने का भी वर्णन है।

उद्योगशीलता—महाभारत के समय जनता का जगत् को निराशापूर्ण दृष्टि से देखने का स्वभाव न था। अनेक स्थानों में यह वाद है कि मनुष्य का दैव बलवत्तर है या कर्तृत्व। इसका निर्णय सदैव कर्तृत्व के पक्ष में मिलता है। भीष्म ने कहा है कि जो मनुष्य बिना ही उद्योग किये दैव के भरोसे बैठा रहता है, वह हिजड़े अथवा स्त्री की भाँति दुखी होता है। (अनुशा० प० अ० ६)

चोरी का अभाव—चोरी करने की प्रवृत्ति भारतीय लोगों में बहुत कम थी। मेगास्थिनीज़ ने अचम्भे के साथ लिखा है—चन्द्रगुप्त

। सेना की छावनी में चार लाख आदमी होंगे, परन्तु प्रतिदिन बहुत
। कम चोरियाँ होने की ख़बर आती थी। चोरियों का माल दो सौ
ाम से अधिक न होता था।

कुछ देशों के गुण-दोष—कर्णपर्व में (अ० ४५) कर्ण ने शल्य
ो जो निन्दा की है उसमें इसका उल्लेख है—पाञ्चालदेशी वेदाध्ययन
े लिए प्रसिद्ध थे, कुरु देश के लोग धर्माचरण के लिए, मत्स्य देशवाले
सत्यता के लिए और शूरसेना लोग यज्ञ के लिए। परन्तु प्राच्य अर्थात्
मगध के लोग दास-स्वभाव के और दक्षिणवाले अधार्मिक होते थे।
पञ्जाब यानी वाह्लीक के चोर और सुराष्ट्र में वर्णसङ्कर बहुत थे।

रण अथवा वन में देहत्याग—भारतीय आर्य उदात्त मृत्यु के
इच्छुक रहते थे। क्षत्रिय के लिए मरने का उचित स्थान अरण्य
अथवा संग्राम है। गदा-युद्ध के समय पाण्डव जब दुर्योधन से शरण
में आने को कह रहे थे तब उसने यही उत्तर दिया था। लड़ाई में
मरना जिनके लिए सम्भव नहीं था, वे बुढ़ापे में तप करने के लिए
अरण्य में चले जाते और वहीं तप द्वारा शरीर छोड़ते थे। ब्राह्मण
भी घर में मर जाना अच्छा नहीं समझते थे। धैर्यवान् लोग महा
प्रस्थान द्वारा अथवा चिता में शरीर को जलाकर या पवित्र नदी में
जल-समाधि लेकर प्राण छोड़ देते थे। लोग वन में जाकर सन्यासी
हो जाते और मरण की प्रतीक्षा किया करते थे। यूनानियों ने
लिखा है कि दो ब्राह्मण जब एथेंस मे बीमार हुए तब चिता जलाकर
उसमें आनन्द के साथ बैठ गये। श्वास को रोककर प्राण छोड़
देना प्रायोपवेशन है। इसका वर्णन हिरोडोटस ने किया है।

शव संस्कार—युद्ध की समाप्ति पर गान्धारी ने रणभूमि वर्णन
में कहा है कि बड़े बड़े राजाओं की लोथों को गिद्ध और गीदड़ खींच
रहे हैं। यूनानियों ने तक्षशिला के आस पास की इस रीति का वर्णन
किया है कि वहाँ जङ्गल मे लोथें रख दी जाती थीं, जहाँ उन्हें गिद्ध
खा जाते थे। यह भी लिखा है कि भारतीय लोग मृतकों के उद्देश्य

से कोई स्मारक नहीं बनाते, उनका मत है कि मृत व्यक्तियों के की चर्चा ही उनका बढ़िया स्मारक है।

वाहन—धनिकों का सबसे अधिक प्रिय वाहन हाथी था। लिखता है साधारण जन-समाज में ऊँट, घोड़े और गदहे सवारी काम आते हैं, परन्तु धनवान् लोग हाथी रखते हैं। इसके बाद के रथ का मान है। ऊँट का दर्जा तीसरा है।

बाग़ बग़ीचे—भारती आर्यों को महाभारत के समय बाग़-बग़ीचे लगाने का बहुत शौक था। अंग देश के चम्पारण्य और उज्जैन के प्रियकारण्य का उल्लेख हुआ है। द्वारका के पास रैवतक पर्वत पर यादव स्त्री पुरुष उत्सव करने जाया करते थे।

विशेष रीतियाँ—कर्णपर्व में दक्षिण भार के देशवालों का यह वर्णन है—सिर में फूलों की माला लपेटे, दाँतों को लाल रँगे (मिस्सी लगाये), रंगी हुई धोतियाँ पहने और शरीर में सुगन्धित चूर्ण लगाये। यह वर्णन आजकल के मदरासियों पर घटित है। पंजाबियों की एक यह रीति वर्णित है कि ये लोग अँगुली से चाट चाटते हैं।

वन्दन—छोटे का बड़ों को नमस्कार करना आर्य रीति है, परन्तु बराबरों में केवल हस्तस्पर्श करने की प्रथा देख पड़ता है। उद्योगपर्व में वर्णन है कि जब युधिष्ठिर बलराम का कर स्पर्श कर चुके तब श्रीकृष्ण आदि ने उन्हें नमस्कार किया और उन्होंने विराट तथा द्रुपद दोनों राजाओं को नमस्कार किया। द्रोणपर्व से प्रकट होता है कि राजा को सूत आदि घुटने टेककर, धरती में माथा रखकर, नमस्कार किया करें। गुरु के चरणों को हाथ से छूकर ब्रह्मचारी नमस्कार करे। साष्टाङ्ग नमस्कार देवताओं को अथवा ऋषि या गुरु आदि को किया जाता था।

नवाँ प्रकरण

राजकीय परिस्थिति

छोटे छोटे राज्य—भारती काल के प्रारम्भ में भारत के छोटे छोटे भागों में बसे हुए स्वातन्त्र्यप्रिय लोगों के सैकड़ों राज्य थे। इनके नाम वहाँ बसनेवाले लोगों के या किसी विशिष्ट राजा के नाम पर पड़ गये थे। महाभारतकाल में भी भारत के प्रदेशों की सूची में २१२ लोग बतलाये गये है। ये लोग एकवंशी, एकधर्मी और एक ही भाषा भाषी थे। इन भिन्न भिन्न राज्यवालों का आपस में विवाह-सम्बन्ध होता था। राजकीय सम्बन्ध में ये सभी स्वतन्त्र थे। इनमें आपस में नित्य झगड़े हाते थे, परन्तु एक दूसरे को नष्ट करने का प्रयत्न इन्होंने कभी नहीं किया। पहले आर्यों (सूर्यवंशी क्षत्रियों) ने पञ्जाब से लेकर हिमालय के किनारे कोसल विदेह तक राज्य स्थापित किये। दूसरे चन्द्रवंशी आर्य गङ्गा की घाटियों से होते हुए आये, पर उन्होंने पहले के आये लोगों का स्वातन्त्र्य नहीं छीना। उन्होंने दक्षिण की ओर गङ्गा और यमुना के किनारे तथा मध्य भारत में मालवा और गुजरात तक सैकड़ों राज्य स्थापित किये। ये राज्य सिकन्दर के समय तक छोटे छोटे ही थे। प्रत्येक राज्य की मध्यवर्ती राजधानी रहती थी और उसके चारों ओर कुछ प्रदेश रहता था। इससे युधिष्ठिर के पाँच ही गाँव माँगने में कुछ आश्चर्य नहीं। कोई राजा बलवान् होकर सम्राट् हो जाने पर भी इन राजाओं का नाश न करता था। पराजित राजा अपने प्रभु को कर और भेंट देता रहता था। शान्तिपर्व में स्पष्ट कहा है कि जित राजा पदच्युत न किया जाय। यदि वह जीवित हो तो उसी को गद्दी दी जाय और यदि वह मर जाय तो उसके लड़के को या किसी नातेदार को। इससे स्पष्ट होगा कि ब्राह्मण-काल से महाभारत काल तक लोगों के एक से ही नाम क्यों पाये जाते हैं। कोसल, विदेह, शूरसेन, कुरु, पाञ्चाल, मत्स्य, मद्र, केकय गान्धार,

वृष्णि, भोज, मालव, क्षुद्रक, सिन्धु, सौवीर, काम्बोज, त्रिगर्त, आनर्त आदि नाम ब्राह्मण ग्रन्थों में तथा महाभारत में भी पाये जाते हैं। सैकड़ों वर्षों के परिवर्तन में भी ये राज्य ज्यों के त्यों बने रहे। उनके नाम लोगों के नामों पर पड़े थे।

राजसत्ता—अनेक छोटे छोटे राज्यों में राजकीय व्यवस्था प्राय राजनियद्ध रहती थी। परन्तु सर्वसाधारण प्राय स्वतन्त्र थे। ब्राह्मणों की दशा बहुत स्वाधीन रहा करती थी। राजा लोग हर मौके पर जनता की राय लिया करते थे। महाभारत से स्पष्ट मालूम पड़ता है कि युद्ध के समय हस्तिनापुर में लोगों की ऐसी सभा बैठी थी और वहाँ युद्ध के सम्बन्ध में सब लोगों की राय लेने की आवश्यकता हुई थी। वहीं श्रीकृष्ण ने भाषण किया था। युद्ध के बाद ब्राह्मणों और राजाओं की अनुमति से ही युधिष्ठिर ने अपना अभिषेक कराया था।

यूनानी इतिहासकारों ने लिखा है कि भारत में प्रजातन्त्र राज्य थे। बौद्ध ग्रन्थों में लिखा है कि शाक्य और लिच्छवि लोगों में राजसत्ता थोड़े से प्रमुख लोगों के अधीन थी। महाभारत में कुछ लोगों को 'गण' कहा है। उसमें उत्सव, सकेत, गोपाल, नारायण, सप्तक इत्यादि नामों से जो गण वर्णित हैं वे प्रजातन्त्र होंगे। ये लोग पञ्जाब के चारों ओर के पहाड़ों के निवासी और प्राय एक ही जाति और वंश के थे।

भारत में पश्चिमी प्रदेश के विशेषत पहाड़ी मुल्क के लोग एक ही वंश के मुख्यत आर्य जाति के थे, अतएव उनकी व्यवस्था प्रमुख लोगों के हाथ में स्वतन्त्र प्रकार की थी। पूर्व की ओर मगध आदि देशों के राज्य बड़े थे। वहाँ की प्रजा विशेषत शूद्र या मिश्र वर्ण की अधिक थी, अतएव वहाँ का राज्य प्रबन्ध राजसत्तात्मक था। ऐतरेय ब्राह्मण में लिखा है—पूर्व के राजा को 'सम्राट्', दक्षिण के राजा को 'भोज', पश्चिमी राजाओं को 'विराट्' और मध्यदेश के राजा को केवल 'राजा' ही कहते हैं। इतिहास से मालूम होता है कि पूर्व की ओर मगध का राज्य बलवान् हो गया था और आगे चलकर वही भारतवर्ष

का सार्वभौम राज्य हुआ। उपनिषदों में भी जनक को सम्राट् की पदवी पाई जाती है। अर्थात् मगध के सिवा विदेह के राजाओं की भी वही पदवी थी। महाभारत से भी प्रकट है कि दक्षिण के बलवान् राजा भीष्मक और रुक्म 'भोज' कहलाते थे। मध्यदेश के कुरु पाञ्चाल आदि के राजाओं के लिए केवल राजा' का प्रयोग किया गया है। इससे अनुमान निकलता है कि सम्राट् की कल्पना पूर्व ओर के मिश्र लोगों के विस्तीर्ण राज्यों के आधार पर उत्पन्न हुई होगी।

प्राचीन साम्राज्य कल्पना—सभापर्व में श्रीकृष्ण ने कहा है—परशुराम के भय से जो क्षत्रिय भागकर छिप रहे थे उन्हीं की सन्तान होने से इनमें उग्र क्षात्र तेज नहीं है। इन हीनवीर्य क्षत्रियों ने निश्चय किया है कि जो राजा सब क्षत्रियों को जीतेगा उसी को अन्य राजा भी सार्वभौम मानेंगे। यही रीति अब तक है। इस समय राजा जरासन्ध सबसे बलवान् है। सभी राजा उसको कर देते हैं। ऐल और ऐक्ष्वाकु राजाओं के सौ कुल हैं। उनमें भोजकुल के राजा इस समय बलिष्ठ हैं। उनमें भी जरासन्ध ने सबको हराया है। इस कथन से मालूम होता है कि सम्राट् को नियुक्त करने की नई रीति सब राजाओं की सम्मति से प्रचलित हुई थी। सम्राट् को सम्राट् होने का चिह्न प्रकट करना—राजसूय यज्ञ करना—पड़ता था। इस यज्ञ के लिए उसे दिग्विजय करके भिन्न भिन्न राजाओं को जीतना पड़ता था। परन्तु सम्राट् को कई राजा स्वेच्छा से मानकर कर देते और राजसूय यज्ञ करने की सम्मति देते थे। पाण्डवों का राजसूय इसका उदाहरण है। भारत काल में साम्राज्य की जो यह कल्पना शुरू हुई वह सिकन्दर के समय की मगधों के साम्राज्य की कल्पना से भिन्न थी। अन्य राज्यों को जीतकर वहाँ अपने अधिकारियों को नियुक्त करने की रीति ईरानी बादशाहों ने जारी की थी। इसी के अनुकरण पर मगध के सम्राटों ने अन्य राज्यों को नष्ट करना आरम्भ किया। भारत में क्षत्रियों का अन्त करनेवाला मगधाधिपति महानन्दी था। इसका वर्णन महाभारत

के बाद के पुराणों में है। महाभारत के साम्राज्य की कल्पना पुरानी है, अर्थात् ब्राह्मणकालीन है। उसका सम्बन्ध राजसूय यज्ञ से है।

राजसत्ता का नियन्त्रण—भारतीय आर्यों की विचार पद्धति के अनुसार क़ानून का उद्गम स्थान राजा की सत्ता में नहीं है। उनके लिए प्रत्यक्ष ईश्वर या ब्रह्मा की आज्ञा का ही आधार है। ये आज्ञाएँ बृहस्पति के दण्डनीति शास्त्र में वर्णित और श्रुति स्मृति आदि में प्रतिपादित हैं। इन आज्ञाओं के बदलने या नई आज्ञाओं के प्रकाशित करने का अधिकार राजाओं को नहीं है। उनका काम तो निष्पक्ष होकर क़ानूनों का परिपालन करना था। धर्मशास्त्र की आज्ञा समझने में कुछ सन्देह हो तो ऐसी सभा की राय ले लें जिसमें धर्मशास्त्रवेत्ता ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य हों। राजसत्ता को ईश्वरप्रदत्त समझने पर राजवंश का आदर होता है। इसी कारण भारतवर्ष में प्राचीन काल से भारतकाल तक अनेक राजवंश बने रहे। बौद्धधर्म के प्रचार से धर्मशास्त्र के प्रति लोगों का आदर भाव घट जाने पर राजसत्ता अनियन्त्रित हो गई साथ ही राजवंश का आदर भी घट गया। फिर चाहे जो राजा बनने और मनमाना राज्य करने लगा।

राजा और प्रजा के बीच समझौता—राजसत्ता के सम्बन्ध में यह कल्पना की गई है कि राजा और प्रजा के बीच एक समझौता हुआ था जिसका वर्णन शान्तिपर्व के ६७वें अध्याय में किया गया है। उसके अनुसार राजा प्रजा पर राज्य करे तथा अधर्मियों को दण्ड दे। प्रजा राजा को कर दे, भूमि की उपज का दशमांश और पशु व्यापार आदि का पचासवाँ अंश दे।

अराजकता के दुष्परिणाम—अराजकता से उत्पन्न परिणामों का वर्णन महाभारत में है (शा० अ० ६८)। अराजक परिस्थिति इतिहास में बार बार उत्पन्न होती है। भारती काल में इस बात पर बहुत ज़ोर दिया गया है कि हर एक राज्य में राजा हो। यह भी कहा गया है कि बाहर से कोई बलवान् राजा राज्यार्थी होकर आवे तो

अराजक राष्ट्र उसका आदर करे; क्योंकि अराजकता से बुरी दूसरी स्थिति नहीं है। जब अराजकता से परकीय राजा भला है तब स्वकीय अत्याचारी राजा तो बहुत अच्छा होगा ही। मालूम होता है, इसी अराजकता के भय के कारण भारत में प्राचीन काल में राजा के सम्बन्ध में लोगों का पूज्यभाव इतना दृढ हो गया था कि राजा को छूना तक महापातक समझा जाता था।

दुष्ट मनुष्य को दण्ड देने का अधिकार राजा को था। राजा के इस अधिकार को 'दण्ड' संज्ञा प्राप्त हुई थी। शान्तिपर्व के १२२ वें अध्याय में लिखा है कि प्रजापति ने प्रजा के संरक्षण के लिए दण्ड को उत्पन्न किया है। उसी का नाम व्यवहार, धर्म, वाक् और वचन है। दण्ड का उचित उपयोग करने से धर्म, अर्थ और काम की प्रवृत्ति होती है। ब्रह्मा ने उसे क्षत्रियों को ही दिया है अन्य लोगों को नहीं।

राजदरबार—प्रत्येक राजा की एक राजधानी होती थी और राजधानी से लगा हुआ एक क़िला रहता था। महाभारत में छ प्रकार के क़िले बतलाये गये हैं—(१) रेतीले मैदान से घिरा हुआ क़िला, (२) पहाड़ी क़िला, (३) भूदुर्ग, (४) मिट्टी का क़िला, (५) नर-दुर्ग अर्थात् पल्टन की छावनी से घिरा हुआ राजा के रहने का स्थान, (६) अरण्यदुर्ग अर्थात् वन के भीतर का क़िला। महाभारत काल में हर एक राज्य में राजधानी का बहुधा एक क़िला रहता था। उसके चारों ओर खाई रहती और इसके चारों ओर ऐसे पुल रहते थे जो चाहे जिस समय निकाल दिये जा सकते और रक्खे जा सकते थे। महाभारत में कहा है कि क़िले में यन्त्र-सामग्री भी तैयार रखनी चाहिए। राजा का तीसरा महत्त्व का साधन मन्त्री है। शान्तिपर्व से मालूम होता है कि मन्त्री आठ रहे होंगे। सम्भव है, ये मन्त्री न्याय सभा के हों। राजा के पास ये अधिकारी अवश्य रहें—मुख्य सचिव, सेनापति, पुरोहित, गुप्त दूत, दुर्गाध्यक्ष, ज्योतिषी और वैद्य।

शान्तिपर्व और सभापर्व में राजा के व्यवहार का बहुत अच्छा विवेचन है। महाभारत काल में राजाओं का व्यवहार वैसा ही रहता था। पूर्वकाल में राजा कैसा ही क्यों न हो, उसकी सत्य निष्ठा, न्याय और उदारता के सम्बन्ध में कभी किसी को सन्देह नहीं रहता था। प्रजा के साथ उसका प्रेम अपने बच्चे के समान रहता था, फलतः राजा पर प्रजा की अतिशय भक्ति भी रहती थी।

अन्तःपुर—राजा का महल प्रायः क़िले के भीतर रहता था। उसमें कई आँगन तथा कक्षाएँ रहती थीं। बाहर की कक्षा में सब के आने की आज्ञा थी। दूसरी कक्षा में अधिकारी और दरबारी लोग ही आ सकते थे। तीसरी में यज्ञशाला, राजा के स्नान तथा भोजनगृह आदि का प्रबन्ध रहता था। चौथी में अन्तःपुर रहता था। यहाँ का स्थान विस्तीर्ण रहता था और उसमें बाग़-बग़ीचे होते थे। राजा की एक या अनेक पटरानियाँ होती थीं। इनके सिवा उसकी और भी कई स्त्रियाँ होती थीं।

मुल्की कामकाज—महाभारत में राज्य के किसी विभाग का वर्णन नहीं है। कारण यह है कि आधुनिक समय के एक या दो ज़िलों के बराबर महाभारत-काल के राज्य होते थे। उस काल के बाद जब राज्य बड़े हुए तब देश, विषय आदि शब्द विभागवाचक हो गये। महाभारत काल के देशों में ग्राम अवश्य थे। ग्राम ही मुल्की कामकाज की पहली और अन्तिम संस्था थे। मुल्की कामकाज के लिए हर एक गाँव में एक मुखिया होता था। उसे ग्रामाधिपति कहते थे। उससे बड़ा दस, बीस, सौ और हज़ार गाँवों का मुखिया होता था। एक गाँव का अधिपति अपने गाँव की सभी ख़बरें दस गाँवों के अधिपति को दिया करता था, और वह अपने से श्रेष्ठ अधिपति को। गाँव का अधिपति अपने गाँव के पास के जङ्गल की पैदावार से निर्वाह करता था तथा दस गाँवों के अधिकारी को और उसके भी ऊपरवाले अधिकारी को जङ्गल की पैदावार का हिस्सा देता था।

ौ गाँवों के अधिपति को निर्वाह के लिए एक गाँव दिया जाता था। हज़ार ग्रामों के अधिपति को एक छोटा सा नगर दिया जाता था। सम्पूर्ण राष्ट्र का मुल्की कामकाज एक स्वतन्त्र अधिकारी को सौंप दिया जाता था। यह देशाधिकारी मन्त्री राजा के पास रहता और राज्य में दौरा करके ग्रामाधिपतियों का राष्ट्र सम्बन्धी व्यवहार देखता रहता और जासूसों द्वारा भी उनकी जाँच किया करता था (भीष्मपर्व अ० ८५)। इनके सिवा राज्य के बड़े बड़े नगरों में नगरों के स्वतन्त्र अधिपति होते थे। साधारणतः उस समय के राष्ट्र में लगभग १५ सौ से लगभग दो हज़ार गाँव तक रहते होंगे।

कर—भूमिकर और व्यापारकर ही राज्य की मुख्य आय थी। यह आय अनाज और हिरण्य के रूप में रहती थी। भूमि का कर बहुत प्राचीन काल से एक दशांश है परन्तु वह नियम आगे नहीं रहा। वह एक षडांश हो गया।

खेत में जितना अनाज पैदा होता था उसका $\frac{1}{6}$ भाग लोगों से लेकर ग्रामाधिपति एकत्र करता था। अनाज के ऐसे कोठे जगह जगह भरे रहते थे। मालूम होता है, भूमि पर लोगों की सत्ता थी और उपज का यह भाग कर के रूप में दिया जाता था। पशु पालनेवाले मेषपाल और ग्वाले भी राज्य में रहते थे। ये पशुओं का $\frac{1}{10}$ भाग राजा को देते थे। वाणिज्य पर $\frac{1}{10}$ कर था। कारीगरों को भी कर देना पड़ता था अथवा उनसे सरकारी काम बेगार में लिया जाता था। आय के अन्य विषय खान, नमक, शुल्क (बाज़ारों में ख़रीद और बिक्री पर का कर), तर (नदी या समुद्र पार करने के स्थान पर लिया जानेवाला कर) और हाथी थे।

भूमि का स्वामित्व और नाप—भूमि का कर अनाज के रूप में लिया जाता था, इससे उसकी नाप-जोख करने की ज़रूरत नहीं थी। गाँव की हद निश्चित होती थी। उसमें खेती के योग्य जितनी भूमि होती थी उस पर गाँववालों का स्वामित्व रहता था। भूमि का क्रय विक्रय भी होता था।

जङ्गल और अधिकारी—महाभारत-काल में आय के ये साधन नहीं थे। यहाँ से अफ़ीम के भेजे जाने का न तो उल्लेख है और न अफ़ीम के लिए संस्कृत में शब्द ही है। शान्तिपर्व में यह तो लिखा है कि शराब की दुकानें राजा लोग बन्द कर दें, पर उस पर कर होने का कहीं उल्लेख नहीं है। जङ्गल की उपज से प्रजा प्रकट रूप से लाभ उठा सकती थी। केवल ऐसे भाग सरकारी जङ्गल माने जाते थे, जिनमें हाथी और उत्तम घास होती थी।

व्यय की मदें—व्यय की असली मद सेना थी। इसके सिवा चोर डाकुओं का दमन करने के लिए पुलिस का उत्तम प्रबन्ध रखने में राजा को अलग व्यय करना पड़ता होगा। किसी अध्याय में युधिष्ठिर से नारद ने पूछा है कि डाकुओं के छिपने की जगह तक घुड़सवारों को भेजता है न? इसी प्रकार सिंचाई विभाग का भी व्यय रहा होगा। नारद ने युधिष्ठिर से पूछा है कि तेरे राज्य में योग्य स्थानों पर बनाये हुए पानी से भरे हुए तालाब हैं न? तेरे राज्य में खेती मेघों के भरोसे पर ही तो अवलम्बित नहीं है? इससे प्रकट होता है कि स्थान स्थान पर पानी इकट्ठा कर रखने की जिम्मेदारी राजा पर थी और इसका सारा व्यय उसे ही करना पड़ता था।

ग्राम संस्था—सभापर्व में बतलाया गया है कि प्रत्येक ग्राम में पाँच स्थायी अथवा वंशपरम्परागत अधिकारी रहते थे। अधिकारी शूर, सज्जन और एक मत से काम करनेवाले होते थे। राष्ट्र में मनुष्यों की बस्ती प्रान्त, ग्राम, नगर और पुर में विभक्त रहती थी। पुर का अर्थ राजधानी था, प्रान्त का अर्थ राष्ट्र की सीमा के पास का प्रदेश था। अकाल के डर से एकत्र किया हुआ अनाज बहुधा नगर या राजधानी में जमा किया जाता था।

आय व्यय विभाग—राज्य में व्यय के अधिकारी स्वतन्त्र रहते थे। कहा गया है कि राजा राज्य के आय-व्यय पर नित्य दृष्टि रक्खा करे। नियम ऐसा था कि राज्य के आय-व्यय का दैनिक हिसाब प्रतिदिन दोपहर के ~.

पहले तैयार हो जाया करे। मालूम होता है, इसके लिए आय व्यय-सम्बन्धी बहुत से कर्मचारी रहा करते थे। नारद ने कहा है कि व्यय जमा का आधा अथवा ¾ हो। प्राचीन काल में राजाओं को बचत रखने की बडी आवश्यकता रहती थी, क्योंकि मनमाने नये कर नहीं लगाये जा सकते थे। दण्डनीति का यह कडा नियम था कि राजा बची हुई रक़म को अपने काम के लिए और धर्म करने के लिए भी ख़र्च न करे।

सिक्के—उस समय वर्तमान समय के सिक्कों का प्रचार न था। बौद्ध ग्रन्थों से मालूम होता है कि उस समय ताँबे अथवा चाँदी के 'पण' चलते थे परन्तु महाभारत में यह शब्द कहीं नहीं मिलता। उसमें निष्क का नाम बार बार आता है। यह सोने का सिक्का था। मालूम नहीं, इसका क्या मूल्य था। अनुमान है कि निष्क सिक्के वर्तमान मुहर के बराबर होंगे।

न्याय-विभाग—राजा प्रतिदिन दरबार में आकर न्याय किया करता था। उसे सहायता देने को एक सभा थी। उसका वर्णन शान्ति-पर्व के ८५ वें अध्याय में है। नियम यह था कि सभा में चार वेदविद् शुद्धचरित्र गृहस्थाश्रमी ब्राह्मण, आठ शस्त्र चलानेवाले बलवान् क्षत्रिय, इक्कीस धनवान् वैश्य और तीन पवित्र विनय सम्पन्न शूद्र हों। ऐसी सभा की सलाह से राजा आठ मन्त्रियों के बीच में बैठकर न्याय करे। इतिहास से मालूम पडता है कि इस तरह की चातुर्वर्ण्य की न्यायसभा महाभारत काल के बाद बन्द हो गई। उस समय वादी प्रतिवादी दोनों अपनी इच्छा से न्यायसभा में जाते थे। प्रतिवादी को सरकारी अधिकारी भी पकड लाते थे। दण्ड, क़ैद प्रहार और वध, सज़ा के ये चार भेद थे। वध शब्द में केवल प्राण लेना न था। उससे हाथ-पैर तोडने की सज़ा भी सूचित होती है। हत्या, चोरी आदि के अपराधों में अमीर ग़रीब सबको वध की ही सज़ा मिलती थी। प्रहार बेत की सज़ा है और दण्ड है अर्थ दण्ड।

परराज्य सम्बन्ध—भारत में छोटे छोटे राज्य धर्म और वंश से एक ही अर्थात् आर्य लोग ही थे, तो भी उनमें आपस में युद्ध हुआ

करता था। उस समय इन सब बातों का ज्ञान प्राप्त हो चुका था कि शत्रु को कैसे जीतना चाहिए, अपनी स्वतन्त्रता कैसे स्थिर रखनी चाहिए मित्रराष्ट्र कैसे बनाये जायँ और माण्डलिक राज्यों को कैसे अपने अधीन किया जाय। परन्तु उन राष्ट्रों में महाभारत-काल में यह भाव जाग्रत रहता था कि उनकी निजी स्वतन्त्रता का नाश न होने पावे। शान्तिपर्व के राजधर्म में शत्रु का पराजय करने के लिए साम, दान, भेद, दण्ड मन्त्र, औषध और इन्द्रजाल के सात उपायों का वर्णन किया गया है इनमें से साम का अर्थ सन्धि है।

कुटिल राजनीति—राजनीति के दो भेद हैं—एक सरल राजनीति, दूसरी कुटिल। शान्तिपर्व के १४०वें अध्याय में युधिष्ठिर ने प्रश्न किया है कि जब दस्युओं से पीडा होती है तब क्या करना चाहिए इसके उत्तर में भीष्म ने जो आपत्ति प्रसङ्ग की नीति बतलाई है वह म्लेच्छों के आक्रमण के समय की है। इसका ठीक उत्तर देना कठिन है कि इस नीति को भारतीय आर्यों ने ग्रीकों से सीखा था या उन लोगों में ही इस तरह की कुटिल नीति के तत्त्व उत्पन्न हो गये थे भारती युद्ध-काल के राजाओं की शत्रु विषयक नीति अत्यन्त सरल और उदात्त थी। उस समय राजाओं के अधिकारी विश्वासघात न करते थे सौति ने अपने समय के अनुसार कहीं कहीं लिख दिया है कि वे विपक्षियों से मिल गये थे। कुटिल नीति की जो बातें कणिक-नीति के अध्याय में दिखाई पड़ती हैं वे महाभारत काल में नई उत्पन्न हुई होंगी

प्राचीन स्वराज्य प्रेम - स्वराज्य का प्रधान लक्षण यही है कि राज्य और राजा दोनों को अपना समझने की दृढ भावना प्रजा में जाग्रत रहे। जिस समय सभी लोग एक ही वंश के समान बुद्धिवाले और सदृश सभ्यतावाले रहते हैं, उस समय ऐसी राजकीय भावना जाग्रत् रहती है। भारती काल के आरम्भ में भारत के राज्यों की ऐसी ही स्थिति थी। परन्तु यह परिस्थिति महाभारत काल में बहुत कुछ बदल गई और कुटिल नीति का बहुत कुछ प्रभाव हो गया।

दसवाँ प्रकरण

सेना और युद्ध

प्राचीन समय में प्रत्येक राष्ट्र में कुछ न कुछ सेना सदैव लड़ने को तैयार रहती थी। सेना के चार मुख्य भाग थे—पदाति, अश्व गज और रथ। गज रूपी साधन प्राचीन समय में बहुत लाभदायक था। अन्य लोगों को भारतीय हाथियों के कारण ही बहुत डर लगता था। सेना के चारों अङ्गों में प्रति दस मनुष्यों पर, सौ पर और हजार पर एक-एक अधिकारी रहता था। भिन्न भिन्न चारों अङ्गों के भी एक-एक अधिकारी आदि रहते थे। सारी सेना का एक प्रधान सेनापति रहता था।

चतुरङ्ग दल के सिवा सेना के चार विभाग और थे। उन्हें विष्टि, नौका, जासूस और देशिक कहा गया है। विष्टि सब प्रकार के सामान को लाद ले जाने की व्यवस्था और साधनों को कहते हैं। युद्धों में बाणों और आयुधों से हजारों गाडियाँ भरकर ले जाना पडता था। 'नौका' में समुद्र और नदियों में चलनेवाली नौकाओं का समावेश होता है। नदियों को पार करने आदि में इनका उपयोग होता होगा। जासूसों का लडाई में उपयोग होता ही होगा। ठीक मालूम नहीं कि देशिक कौन थे। ये भिन्न भिन्न अवसरों पर आगे जाकर रास्ता दिखाने तथा शत्रु का हाल लानेवाले होंगे।

पैदल और घुडसवार—पैदल सेना के आयुध ढाल और तलवार थे। इनके सिवा अन्य आयुध भी बतलाये गये हैं, जैसे प्रास (भाला) परशु, कुल्हाडी भिंदिपाल तोमर ऋष्टि और शुक्ल। यह नहीं बतलाया जा सकता कि भिंदिपाल आदि हथियार कैसे थे। गदा नामक आयुध पदातियों के पास न था। इसका उपयोग द्वन्द्वयुद्ध में किया जाता था और विशेष बलवान् क्षत्रिय लोग ही किया करते थे। घुड़सवारों के पास तलवारें और भाले रहते थे। उनका भाला कुछ अधिक लम्बा रहता था। गान्धार के राजा शकुनि के पास दस हजार

घुड़सवार नुकीले भालों से लड़नेवाले थे। कवच का अर्थ जिरह-बख्तर है। यह बहुधा भारी रहता है। इस कारण पैदलों और घुड़सवारों के पास कवच नहीं रहता था। तथापि ऐसे पदातियों का वर्णन है जो कवच पहने थे। रथी और हाथी पर बैठनेवाले योद्धा के पास सदा कवच रहता था।

भिन्न भिन्न युद्ध के सम्बन्ध में भिन्न भिन्न लोगों की ख्याति था। गान्धार, सिन्धु और सौवीर के घुड़सवार प्रसिद्ध थे। उशीनर लोग सब प्रकार के युद्धों में कुशल थे। प्राच्य लोग मातंग युद्ध में और मथुरा के लोग बाहुयुद्ध में कुशल थे। दक्षिण अर्थात् विदर्भ के योद्धा तलवार चलाने में कुशल होते थे।

हाथी—प्राचीन समय में हाथी पर महावत और युद्ध करनेवाला योद्धा दोनों बैठते थे। युद्ध करनेवाला धनुष बाण, विशेषत शक्ति और बर्छी का उपयोग करता था। गजसेना कभी कभी हार जाती थी। वह भागने पर अपनी ही फौज का नाश कर डालती थी या स्वयं उसी का नाश हो जाता था।

रथी और धनुष बाण—भारती काल में रथी अजेय योद्धा होता था। प्राचीन काल में दूर से शत्रु को घायल करने अथवा मार डालने का अस्त्र धनुष बाण ही था। इस विद्या को आर्यों ने बहुत उन्नत किया था। धनुष-बाण का उपयोग करनेवाले योद्धाओं के लिए रथों की उपयोगिता बहुत थी। ऐसे योद्धाओं की शक्ति रथ की सहायता से दसगुनी बढ़ जाती है। पैदल योद्धा उतने ही बाण ले जा सकता जितने एक मनुष्य के उठाये जा सकते हैं, परन्तु रथ में बहुत बाण रक्खे जा सकते हैं। इसके सिवा जहाँ से बाण चलाना हो उस स्थान को पैदल आसानी से बदल नहीं सकता, परन्तु रथ की सहायता से धनुर्द्धारी वीर निशाना मारने के भिन्न भिन्न स्थान जल्दी-जल्दी बदल सकता है। रथ के साथ बाणों का संग्रह करना आवश्यक था। कर्ण पर्व में अश्वत्थामा ने कहा है कि बाणों से भरी सात गाड़ियाँ मेरे पीछे

रहने दो। अन्य स्थान में वर्णन है कि तीन घटे के भीतर उसने ऐसी आठ गाड़ियाँ ख़ाली कर दीं जिनमें आठ आठ बैल जुते थे।

अस्त्र—अस्त्रों का उपयोग बहुधा रथी ही करते थे। मन्त्रों का प्रयोग करके बाण चलाये जाते थे। उस समय दैविक शक्ति द्वारा विलक्षण शस्त्र या पदार्थ—जैसे अग्नि, वायु, विद्युत्, वर्षा आदि—उत्पन्न होते थे जिनके कारण शत्रु सेना का नाश हो जाता था। अस्त्रों की योजना में चार भाग थे—मन्त्र, उपचार, प्रयोग और संहार। अस्त्रों का प्रयोग और संहार करने की रीति गुरु से धनुर्वेद की सहायता से सीखनी पड़ती थी। अस्त्र-विद्या धनुर्विद्या से भिन्न थी। अस्त्र-विद्या मन्त्र-विद्या है और धनुर्विद्या मानवीय विद्या है। धनुर्विद्या में प्रवीणता प्राप्त करने के लिए अर्जुन को रात दिन अभ्यास करना पड़ा था। परन्तु अस्त्र विद्या गुरुकृपा से उसे जल्दी ही प्राप्त हो गई थी। उस समय धर्मयुद्ध का यह नियम था कि अस्त्र जाननेवाला अस्त्र के न जाननेवाले पर अस्त्रों का प्रयोग न करे। अस्त्र के मन्त्र प्रसङ्गवश याद भी न आते थे। कर्ण को ऐन मौक़े पर ब्रह्मास्त्र याद न आया। अर्जुन को भी श्रीकृष्ण की मृत्यु के बाद दस्युओं के युद्ध में अस्त्र याद न आये। लड़ाई के अन्तिम परिणाम के लिए अस्त्रों का बहुत उपयोग नहीं हुआ।

रथ युद्ध—भारती युद्ध में सैकड़ों रथों के एक ही स्थान पर लड़ने का वर्णन प्रायः नहीं है। प्रत्येक रथी अलग अलग लड़ता था और वह भी दूर से। युद्ध के भिन्न भिन्न स्थानों पर शीघ्रता से पहुँचकर बाण बरसाना ही रथी का मुख्य काम था। रथ के दो चक्ररक्षक भी रहते थे। दोनों ओर से आक्रमण न होने देने के लिए रथ के दोनों ओर पहियों के पास और भी दो रथ चलते थे। उनमें जो धनुर्द्धर रहते थे उन्हें चक्र रक्षक कहते थे।

रथ में चार घोड़े जोते जाते थे। रथ और घोड़े दोनों ख़ूब सजाये जाते थे। रथ पर गोल शिखर रहता था और ऊपर अलग अलग रङ्ग की ध्वजा फहराया करती थी। दूर से ही पहचान हो जाती थी,

घुड़सवार नुकीले भालों से लड़नेवाले थे। कवच का अर्थ जिरह-बख़्तर है। यह बहुधा भारी रहता है। इस कारण पैदलों और घुड़सवारों के पास कवच नहीं रहता था। तथापि ऐसे पदातियों का वर्णन है जो कवच पहने थे। रथी और हाथी पर बैठनेवाले योद्धा के पास सदा कवच रहता था।

भिन्न-भिन्न युद्ध के सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न लोगों की ख्याति थी। गान्धार, सिन्धु और सौवीर के घुड़सवार प्रसिद्ध थे। उशीनर लोग सब प्रकार के युद्धों में कुशल थे। प्राच्य लोग मातंग-युद्ध में और मथुरा के लोग बाहुयुद्ध में कुशल थे। दक्षिण अर्थात् विदर्भ के योद्धा तलवार चलाने में कुशल होते थे।

हाथी—प्राचीन समय में हाथी पर महावत और युद्ध करनेवाला योद्धा दोनों बैठते थे। युद्ध करनेवाला धनुष-बाण, विशेषतः शक्ति और बर्छी का उपयोग करता था। गजसेना कभी कभी हार जाती थी। वह भागने पर अपनी ही फ़ौज का नाश कर डालती थी या स्वयं उसी का नाश हो जाता था।

रथी और धनुष-बाण—भारती काल में रथी अजेय योद्धा होता था। प्राचीन काल में दूर से शत्रु को घायल करने अथवा मार डालने का अस्त्र धनुष-बाण ही था। इस विद्या को आर्यों ने बहुत उन्नत किया था। धनुष-बाण का उपयोग करनेवाले योद्धाओं के लिए रथों की उपयोगिता बहुत थी। ऐसे योद्धाओं की शक्ति रथ की सहायता से दसगुनी बढ़ जाती है। पैदल योद्धा उतने ही बाण ले जा सकेगा जितने एक मनुष्य के उठाये जा सकते हैं, परन्तु रथ में बहुत बाण रक्खे जा सकते हैं। इसके सिवा जहाँ से बाण चलाना हो उस स्थान को पैदल आसानी से बदल नहीं सकता, परन्तु रथ की सहायता से धनुर्धारी वीर निशाना मारने के भिन्न-भिन्न स्थान जल्दी-जल्दी बदल सकता है। रथ के साथ बाणों का संग्रह करना आवश्यक था। कर्ण-पर्व में अश्वत्थामा ने कहा है कि बाणों से भरी सात गाड़ियाँ मेरे पीछे

रहने दो। अन्य स्थान में वर्णन है कि तीन घटे के भीतर उसने ऐसी आठ गाड़ियाँ ख़ाली कर दीं जिनमें आठ आठ बैल जुते थे।

अस्त्र—अस्त्रों का उपयोग बहुधा रथी ही करते थे। मन्त्रों का प्रयोग करके बाण चलाये जाते थे। उस समय दैविक शक्ति द्वारा विलक्षण शस्त्र या पदार्थ—जैसे अग्नि, वायु, विद्युत्, वर्षा आदि—उत्पन्न होते थे जिनके कारण शत्रु सेना का नाश हो जाता था। अस्त्रों की योजना में चार भाग थे—मन्त्र, उपचार, प्रयोग और संहार। अस्त्रों का प्रयोग और सहार करने की रीति गुरु से धनुर्वेद की सहायता से सीखनी पड़ती थी। अस्त्र-विद्या धनुर्विद्या से भिन्न थी। अस्त्र-विद्या मन्त्र-विद्या है और धनुर्विद्या मानवीय विद्या है। धनुर्विद्या में प्रवीणता प्राप्त करने के लिए अर्जुन को रात दिन अभ्यास करना पड़ा था। परन्तु अस्त्र-विद्या गुरुकृपा से उसे जल्दी ही प्राप्त हो गई थी। उस समय धर्मयुद्ध का यह नियम था कि अस्त्र जाननेवाला अस्त्र के न जाननेवाले पर अस्त्रों का प्रयोग न करे। अस्त्र के मन्त्र प्रसङ्गवश याद भी न आते थे। कर्ण को ऐन मौक़े पर ब्रह्मास्त्र याद न आया। अर्जुन को भी श्रीकृष्ण की मृत्यु के बाद दस्युओं के युद्ध में अस्त्र याद न आये। लड़ाई के अन्तिम परिणाम के लिए अस्त्रों

कि यह कौन सा वीर है। एक ढोल या दो मृदङ्ग रहते थे, जो रथ के चलने पर अपने आप बजने लगते थे। रथ-युद्ध में सारथी का बहुत महत्त्व था। सम और विषम भूमि देखकर रथ चलाना, ऐसे स्थान पर रथ को वेग से ले जाना जहाँ से ठीक निशाना मारा जाय सारथी के काम थे। दो रथियों में युद्ध होते समय रथ मण्डलाकार घूमते रहते थे।

धर्मयुद्ध के नियम—धर्मयुद्ध का यह नियम था कि रथी रथी पर, हाथी हाथी पर और घुड़सवार घुड़सवार पर आक्रमण करें, दोनों योद्धाओं के शस्त्र भी एक से हों। यदि प्रतिपक्षी शोकाकुल हो तो उस पर प्रहार नहीं करना चाहिए। डर जानेवाले, पराजित और भागनेवाले पर शस्त्र न चलावे। बाण विपलिप्त अथवा उलटे काँटेवाला न हो। प्रतिपक्षी का शस्त्र टूट जाय, कवच निकल जाय और वाहन मर जाय तो उस पर प्रहार न करे। आहत शत्रु को औषध दे अथवा उसके घर पहुँचा दे।

कूटयुद्ध—परन्तु महाभारत काल में उक्त नियम बदल दिये गये थे और कूटयुद्ध के नियमों से कार्य किया जाता था। धर्म युद्ध में कपट, प्रजा का नाश और अशक्त एवं पराजित को कष्ट देना आदि वर्जित था। परन्तु कूटयुद्ध में इन सबका प्रवेश होने लगा। शान्ति पर्व के ६९वें अध्याय में इन सब बातों का उल्लेख है। इन नवीन नियमों का प्रचार यूनानियों की चढ़ाई के समय से हुआ होगा। यूनानियों ने सिकन्दर के समय भिन्न युद्ध पद्धति से काम लिया था। शत्रु को चाहे जिस तरह पराजित करना ही उनके युद्ध शास्त्र का नियम था। भारतीयों ने यूनानियों से यह नियम सीखा और तभी से धर्म युद्ध के नियम प्राय लुप्त हो गये।

सेना का जमाव और व्यूह—सेना के आगे बहुधा हाथी खड़े किये जाते थे। हाथियों के मध्य भाग में रथ, उनके पीछे घुड़सवार और घुड़सवारों के मध्य भाग में कवचधारी पैदलों को रखने का विधान है। महाभारत काल में रणभूमि पर सेना का जमाव इसी रीति से

ोता रहा होगा। परन्तु भारती-युद्ध के वर्णन में इस तरह के जमाव का वर्णन नहीं है। महाभारत में इसका बहुत वर्णन है कि रोज़ सबेरे सेनापति ने अपनी सेना के भिन्न-भिन्न विभागों को कैसे चलाया और समग्र रणभूमि पर युद्ध कैसे शुरू हुआ। परन्तु एक बार व्यूह रचना हो जाने पर सेना के भिन्न भिन्न विभागों से सेनापति का कोई सम्बन्ध नहीं रह जाता था। सेना का एक मध्य भाग रहता था और दोनों ओर दो पक्ष रहते थे। उनमें थोड़ा-थोड़ा अन्तर रहता था और उनको परस्पर सहारा रहता था। भारती-युद्ध के समय भिन्न-भिन्न व्यूहों में ऐसा ही सैन्य-विभाग था। व्यूहों का आकार बहुधा पक्षी का देख पड़ता है। पाण्डवों के पहले दिन के क्रौंच व्यूह का मुख्य भाग ऐसा ही था। पक्षी के शिर-स्थान पर द्रुपद था। नेत्र-स्थान में कुन्ति-भोज और चैद्य थे। अर्थात् ये तीनों सेना के अग्र-भाग में थे। अन्य लोगों के साथ युधिष्ठिर पृष्ठभाग अर्थात् मध्य में था। धृष्टद्युम्न और भीमसेन पंखों के स्थान में अर्थात् दाहिनी और बाईं ओर थे। द्रौपदी के पुत्र और अन्य राजा लोग दाहने पक्ष की सहायता में थे। बाईं ओर की सहायता में भी अन्य राजा लोग थे। विराट, शैब्य और काशिराज पीछे की ओर थे। इस प्रकार सेना के वही भाग किये गये थे जो सदा रहते थे। कौरवों की सेना का भी इसी तरह विभाग किया गया था।

प्रतिदिन व्यूह नये-नये नामों से बनते थे। आजकल स्थिति की भिन्नता के कारण उनका यथार्थ ज्ञान नहीं होता। चक्रव्यूह की कल्पना तो अब हो ही नहीं सकती। पहला प्रश्न यह होता है कि द्रोण ने जो चक्रव्यूह बनाया था, वह अपनी रक्षा के लिए था या शत्रु का नाश करने के लिए। मालूम नहीं कि इस व्यूह में अकेले अभि-

पैदल से पैदल का युद्ध हो। इसके सिवा रथ भी हाथीवाले पर औ हाथीवाले रथ पर टूटकर उसको चूर कर देते थे। रथी गजारोहि पर बाण चलाते थे और पैदलों को तीक्ष्ण बाण मारते थे। पैदल पैदलों को गोफन और फरसे से मारते थे और रथ पर भी आक्रमण करते थे। हाथी पैदलों को पीस देते थे और पैदल गजारोहियों को गिरा देते थे। अन्तिम दिन के युद्ध का वर्णन बहुत ही उत्तम है कौरवों का दल अन्त में दो-तीन बजे के लगभग तितर बितर होने लगा और दुर्योधन युद्धभूमि से गायब हो गया।

अक्षौहिणी की संख्या—भारती युद्ध काल में अक्षौहिणी की संख्या के सम्बन्ध में आदिपर्व और उद्योगपर्व में परस्पर भिन्नता पाई जाती है। युद्ध के १८वें दिन कौरवों के पास ३ करोड़ पैदल, ३ लाख सवार तथा पाण्डवों की ओर २ करोड़ पैदल और १० हजार सवार बाक़ी थे। इसी तरह स्त्रीपर्व के अन्त में वर्णन है कि इस संग्राम में सब मिलकर ६६ करोड़ १ लाख ३० हजार मनुष्य मरे। स्पष्ट है कि यह संख्या १८ अक्षौहिणी की संख्या से अधिक है। हम समझते हैं, सौति ने जान बूझकर इन संख्याओं को कूट रक्खा है।

ग्यारहवाँ प्रकरण

व्यवहार और उद्योग-धन्धे

खेती और बाग़ीचे—महाभारत काल में लोगों का मुख्य धन्धा खेती ही था और इसका आजकल जितना उत्कर्ष उस समय भी हो चुका था। आजकल के सब अनाज उन दिनों भी उत्पन्न किये जाते थे। बृहदारण्य में चावल, तिल, गेहूँ, ज्वार आदि का उल्लेख है। सरकार की ओर से बड़े बड़े तालाब बनते थे। आम के पेड़ लगाने का खूब रिवाज था।

द्रोणपर्व के एक उदाहरण से जान पड़ता है आजकल के जैसे क़लमी आम के बग़ीचे भी उन दिनों लगाये जाते थे।

खेती के बाद गोरक्षा का धन्धा था। जंगलों में गौएँ चराने के खुले साधन रहने के कारण यह धन्धा ख़ूब चलता था। चारण लोगों को बैलों की आवश्यक्ता रहती थी; क्योंकि उन दिनों माल लाने ले जाने का काम बैलों से ही होता था। गाय के दूध दही की भी बड़ी आवश्यकता रहती थी। अजाविक (बकरियों भेड़ों) का भी बहुत पालन होता था। हाथी और घोड़े के सम्बन्ध की विद्या को लोग अच्छी तरह जानते थे। महाभारत में अश्वशास्त्र का उल्लेख है। बैल, घोड़ा और हाथी के सम्बन्ध में बहुत छानबीन हो चुकी थी और उनकी रोग-चिकित्सा का भी ज्ञान बढ़ा-चढ़ा था। आदिपर्व में लिखा है—साठवें वर्ष में हाथी का पूर्ण यौवन होता है। उस समय उसके तीन स्थानों से मद टपकता है—कानों के पीछे, गण्डस्थल और गुह्य देश से। महाभारत-काल की यह जानकारी महत्त्वपूर्ण है।

रेशमी, सूती और ऊनी कपड़े—प्राचीन काल में माल लाने ले जाने के साधनों की विपुलता न होने से भारत के भिन्न-भिन्न राज्यों में ही कम व्यापार होता रहा होगा। यह अनुमान करने के कारण हैं कि भारत-काल में भी समुद्र-द्वारा व्यापार होता था। रफ़्तनी की चीज़ों में सबसे पहला नाम सूती सूक्ष्म वस्त्रों का है। कपास शब्द महाभारत में अनेक स्थानों में आया है। कपास का एक पर्यायवाची शब्द तूल है। यह शब्द उपनिषदों में भी मिलता है। कपास से सूत निकालकर उससे कपड़े बुनने की कला भारत में अत्यन्त प्राचीन काल से थी। महाभारत-काल में बहुत महीन वस्त्र बनाने की कला पूर्णता को पहुँच गई थी। इतिहास से मालूम होता है कि रोमन स्त्रियों को भारतीय महीन कपड़ों से बड़ा प्रेम था। राजसूय यज्ञ के वर्णन में कहा गया है—भरुकच्छ में रहनेवाले लोग ऐसी एक लाख दासियाँ कर-स्वरूप लाये थे जो महीन सूती कपड़े पहने हुए थीं। भड़ौच की तरह महीन सूती कपड़ों के लिए

पाण्ड्य और चोल देशों की भी ख्याति थी। उत्तर के देश ऊनी औ रेशमी सूक्ष्म वस्त्र बनाने के लिए विख्यात थे। राजसूय-यज्ञ के सम ऐसे वस्त्र भेंट के रूप में आये थे। उसमें ऊनी कपड़ों का, रंकु मृग रोयें से बनाये गये कपड़ों का और रेशमी कपड़ों का स्पष्ट वर्णन है। वस्त्र पंजाब और अफ़ग़ानिस्तान की ओर बनते रहे होंगे।

इस तरह के क़ीमती कपड़े तैयार करने का मुख्य साधन बड़ी पूँजी है। प्राचीन काल में सरकार से ऐसी सहायता मिलने की पद्धति थी। नारद की राजनीति में इसका उल्लेख है। उन्होंने युधिष्ठिर से पूछा है कि तू सब कारीगरों को चार महीने तक चलने योग्य द्रव्य और उपकरण देता है न? इससे प्रकट है कि सरकार उद्योग धन्धों की वृद्धि के लिए सहायता करती रहती थी।

कपड़ों के लिए रंग की कला का ज्ञान अत्यन्त आवश्यक था। वह कला भी महाभारत-काल में पूर्णता को पहुँच चुकी थी। ये रंग बहुधा वनस्पतियों से बनाये जाते थे और टिकाऊ होते थे। अजन्ता की गुफाओं की चित्रकारी में जो रंग काम में लाये गये हैं, वे हज़ार बारह सौ वर्ष के बाद भी ज्यों के त्यों चमकते हुए हैं। यूनानियों ने लिखा है कि भारत

हारों का धन्धा भी पूर्णता को पहुँच चुका था। उपनिषदों में फ़ौलाद अथवा कार्ष्णायस का उल्लेख है। नहरनी से लेकर तलवार तक तेज़ धारवाले हथियार फ़ौलाद के ही बनाये जाते थे। लुहार लोग तलवार, भाले, बाण, चक्र, गदा आदि लोहे और फ़ौलाद के ही बनाते थे। हाथी दाँत के निपुण कारीगर भी थे।

भारत की रफ़्तनी की क़ीमती वस्तुओं में सोने की तरह रत्न और मोती मुख्य थे। रत्न और मोती दक्षिणी पहाड़ों में और सिंहलद्वीप के निकटवर्ती समुद्र में पाये जाते थे और अब भी मिलते हैं।

वास्तुविद्या—भारती काल में पत्थरों की शिल्पकला का उन्नत अवस्था में होना नहीं पाया जाता। प्राचीन काल में भारत में प्रायः लकड़ी और मिट्टी के मकान बनते थे। दुर्योधन ने पाण्डवों के रहने के लिए जो मकान बनवाने की आज्ञा दी थी उसमें लकड़ी और मिट्टी की दीवार बनाने को कहा गया था। इससे प्रकट होता है कि महाभारत काल में बड़े लोगों के भी घर मिट्टी के होते थे पाण्डवों के लिए मयासुर ने जो सभाभवन बनाया था उससे महाभारत-काल के लोगों की यह धारणा मालूम होती है कि बड़ी बड़ी इमारतें असुर अथवा ईरानी और यवन ही उत्तम रीति से बना सकते हैं।

व्यापार—भिन्न भिन्न देशों से भिन्न भिन्न वस्तुएँ ख़रीदकर लाने और यहाँ की वस्तुएँ परदेश ले जाने आदि के लाभदायक काम बहुतेरे वैश्य करते थे। महाभारत में एक दो स्थानों पर बञ्जारे लोगों के हज़ारों बैलों का वर्णन है। ये लोग किसी राजा के अधीन नहीं रहते थे। इनके द्वारा माल भेजने में कभी कभी धोखा भी होता था। नदी और समुद्र के द्वारा भी माल को लाते ले जाते थे। परन्तु महाभारत में इसका अधिक वर्णन नहीं है। इतिहास से मालूम होता है कि महा-भारत काल में पश्चिमी किनारे से ग्रीक और अरब लोगों का व्यापार होता था। परन्तु यहाँ से आज कल की तरह अनाज और अन्य कच्चा

दास—एक महत्व का प्रश्न यह है कि पूर्वकाल में यहाँ दास थे या नहीं। प्राचीन काल म शारीरिक परिश्रम के काम दासों से कराने की प्रथा सभी देशों में थी। लड़ाई में जीते हुए लोग दास होते थे। वैदिक काल में यहाँ के मूल निवासियों को दास कहा है और ये लोग जीते ही गये थ। अन्त में इसी वर्ग का शूद्र वर्ण बना और शूद्रों का धन्धा केवल आर्यों की सेवा करना निश्चित हुआ। भारती युद्ध काल में जीते जाने पर आर्य लोग भी दास होते थे। चाहे यह जीत युद्ध में हो या द्यूत में। जब पाण्डव स्वयं अपने को दाँव पर लगाकर हार गये तब वे दुर्योधन के दास हो गये। इस तरह के दाँव लगाने की प्रथा महाभारत-काल में भी रही होगी। दास होने पर सब प्रकार के सेवा कर्म तो करने ही पड़ते थे परन्तु उसकी स्वतन्त्रता भी चली जाती थी और उसका वर्ण तथा जाति भी भ्रष्ट हो जाती थी। परन्तु पाश्चात्य देशों की तरह परदेश अथवा स्वदेश के लोगों को जीतकर दास अथवा गुलाम बनाने की प्रथा महाभारत-काल म भारत में नहीं थी। यूनानियों ने लिखा है—भारत के लोग अपने देश के अथवा परदेश के लोगों को गुलाम नहीं बनाते।

महाभारत काल में दास का निश्चित अर्थ शूद्र मालूम होता है और शूद्र का काम परिचर्या करना ही माना गया था। परन्तु सभी शूद्र सेवा नहीं करते थे। बहुतेरे स्वतन्त्र धन्धों में लगकर अपना पेट भरते थे और उनके पास द्रव्य का संचय भी होता था।

संघ—निश्चय पूर्वक मालूम होता है कि महाभारत काल में व्यापारी वैश्यों तथा कारीगरी करनेवाले शूद्रों अथवा मिश्र जातियों में कहीं कहीं संघ की व्यवस्था थी। इन लोगों के संघों का नाम गण अथवा श्रेणी देख पड़ता है। इन गणों के मुखिया होते थे। राजधर्म में कहा गया है कि इन लोगों पर कर लगाते समय श्रेणी के मुखिया लोगों को बुलाकर उनका सम्मान करना चाहिए।

तोल और माप—अनाज की मुख्य तोल—मुष्टि—का वर्णन महाभारत म कई स्थानों पर आया है। शान्तिपर्व में कहा गया है:

कि दो सौ छप्पन मुष्टि का एक पूर्णपात्र होता है। इस तरह धान्य की बड़ी तोल द्रोण था। यह नहीं बतलाया जा सकता कि द्रोण का और आजकल के मन का कैसा सम्बन्ध है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में वज़न और तोल दिये हुए हैं। यद्यपि उनका उल्लेख महाभारत में नहीं है, तथापि यह नहीं कहा जा सकता कि वे उस समय में नहीं थे। जब सोना, चाँदी आदि का चलन था, रत्नों की बिक्री होती थी, तब सूक्ष्म बाँटों की आवश्यकता अवश्य रही होगी।

बारहवाँ प्रकरण

भौगोलिक ज्ञान

महाभारत काल में न केवल भारतवर्ष का सम्पूर्ण ज्ञान था, प्रत्युत आस पास के देशों अर्थात् चीन, तिब्बत, ईरान आदि देशों की भी बहुत कुछ जानकारी थी। हाँ सम्पूर्ण पृथ्वी के विषय में उनकी कल्पना अवश्य प्रत्यक्ष ज्ञान मूलक नहीं थी। उस समय के लोगों को सम्पूर्ण पृथ्वी का ज्ञान होना सम्भव भी नहीं था।

जम्बूद्वीप के वर्ष—प्राचीन काल म पृथ्वी के सात द्वीप होने की कल्पना थी। इनमें मुख्य जम्बूद्वीप या सुदर्शन द्वीप है, जिसमें हम लोग रहते हैं। यह द्वीप गोल (चक्राकार) है और चारों ओर लवण समुद्र से घिरा हुआ है। इसके सात वष (भाग) हैं। बिलकुल नीचे का, अर्थात् दक्षिण ओर का, भाग भारतवर्ष है, इसके उत्तर में हिमालय पर्वत है। हिमालय के सिरे पूर्व पश्चिम समुद्र में डूबे हुए हैं। उसके उत्तर में हैमवत वर्ष है और उसके उत्तर में हेमकूट पर्वत की श्रेणी है। यह श्रेणी भी पूर्व पश्चिम समुद्र तक फैली हुई है। इसके उत्तर ओर हजारों योजनों के बाद निषध पर्वत की श्रेणी पूर्व पश्चिम समुद्र तक फैली हुई है। यहाँ तक का ज्ञान प्रत्यक्ष अथवा सुना हुआ

महाभारत काल में था, क्योंकि इन पर्वतों की श्रेणियाँ हिमालय, क्वेनलन् (कराकोरम) और अलताई नामक पर्वतों की हैं। महाप्रस्थानिक पर्व में यह वर्णन है कि पाण्डव जिस समय हिमालय के उत्तर में गये उस समय उन्हें वालुकामय समुद्र मिला। यह समुद्र गोबी की मरुभूमि है। ये श्रेणियाँ जानकारी से ही लिखी गई हैं। हेमकूट और निषध पर्वत के बीच के भाग को हरिवर्ष कहते थे। हरिवर्ष में जापान, मङ्गोलिया, तुर्किस्तान, रूस जर्मनी, इँगलैंड इत्यादि देशों का समावेश होता है। हैमवत वर्ष में चीन, तिब्बत, ईरान, ग्रीस, इटली इत्यादि देश होंगे। महाभारत से जान पड़ता है कि इनका ज्ञान भारतवासियों को था।

परन्तु उपर्युक्त वर्णन के आगे का वर्णन काल्पनिक हो सकता है। निषध के उत्तर और मध्य में मेरु पर्वत है। मेरु के उत्तर और फिर तीन श्रेणियाँ—नील, श्वेत और शृङ्गवान् नामक—पूर्व पश्चिम समुद्रों तक फैली हुई मानी गई हैं। मेरु के उत्तर और दक्षिण ओर माल्यवान् और गन्धमादन नाम की दो श्रेणियाँ कल्पित की गई हैं। नील श्वेत और शृङ्गवान् पर्वत के उत्तर ओर के प्रदेश को नीलवर्ष, श्वेतवर्ष और हैरण्वक अथवा ऐरावत वर्ष नाम दिये गये हैं। मेरु पर्वत के चारों ओर चार प्रदेश—उत्तर कुरु भद्राश्व केतुमाल और जम्बूद्वीप नामक—कल्पित किये गये हैं। यह कल्पना की गई है कि हिमवान् पर्वत पर राक्षस हेमकूट पर गुह्य, निषध पर सर्प श्वेत पर देवता और नील पर ब्रह्मर्षि रहते हैं। जम्बूद्वीप में एक बहुत बड़ा जामुन का पेड़ है जो ११०१ योजन ऊँचा है। इसके बड़े बड़े फल भूमि पर गिरते हैं। उनसे शुभ्र रस की एक नदी निकलती है जो मेरु पर्वत की प्रदक्षिणा करती हुई उत्तर-कुरु में चली जाती है। उस मीठे रस से इन्द्रगोप की तरह चमकदार जाम्बूनद नामक सुवर्ण निकलता है। देवता लोग उस सुवर्ण के आभूषण पहनते हैं। (भीष्मपर्व)।

उपर्युक्त वर्णन से मालूम हो जायगा कि हमारे महाद्वीप को जम्बू-द्वीप क्यों कहते हैं। मेरु के आसपास के प्रदेश में आजकल के हिसाब से साइबेरिया और कनाडा प्रान्तों का समावेश होता है। इन प्रान्तों में आजकल भी पृथ्वी के पृष्ठ भाग पर सोना फैला हुआ मिलता है। साइबेरिया की नदियों से बहुत सुवर्णकण बहकर आते हैं। इससे जान पड़ता है कि इस प्रदेश की कल्पना निरी मस्तिष्क की उपज नहीं है, किन्तु उसके लिए प्रत्यक्ष स्थिति का भी कुछ आधार है। लोकमान्य तिलक के अनुसार आर्यों का मूल निवास यदि उत्तर ध्रुव प्रदेश में था तो कहना पड़ता है कि उत्तर कुरु भद्राश्व आदि देशों का जो अतिशयोक्ति युक्त वर्णन है उसके लिए कुछ न कुछ दन्तकथा अथवा पूर्व-स्मृति का आधार अवश्य होगा। यह माना जा सकता है कि आर्यों के पूर्वज उत्तर ध्रुव के प्रदेश में थे। इस सिद्धान्त को पुष्ट करनेवाला 'उत्तर कुरु' शब्द है। यह स्पष्ट मालूम होता है कि आर्यों के मुख्य कुरु लोगों की उत्तर और की मूल भूमि 'उत्तर कुरु' है और उसका स्थान महाभारत काल में लोगों की कल्पना से मेरु पर्वत अर्थात् उत्तर ध्रुव के पास था।

शेष छः द्वीप जम्बू द्वीप के किस ओर और कैसे थे, इसका वर्णन महाभारत में विस्तृत रूप से नहीं है। सप्तद्वीपा वसुन्धरा—यह वाक्य संस्कृत साहित्य में प्रसिद्ध है। भीष्मपर्व के ११वें अध्याय में भी सात द्वीप मुख्य माने गये हैं। और उनमें से चार—शाक, कुश, शाल्मलि और क्रौञ्च—का नाम भी बताया है। शेष तीन द्वीपों जम्बू, काश्यप और नाग का उल्लेख अन्यत्र किया गया है। शाक द्वीप का वर्णन विस्तार के साथ है जो काल्पनिक है।

महाभारत-काल में भारतवर्ष का ज्ञान—वेद-काल में आर्यों को पंजाब और मध्यदेश का ज्ञान था। फिर उन्हें सारे देश की जानकारी हो गई। महाभारत से जान पड़ता है कि उस काल में उनको स देश का सम्पूर्ण ज्ञान था। भीष्मपर्व में भारतवर्ष का जो वर्णन

है उसमें कन्या कुमारी तक की नदियों पर्वतों और देशों की सूची दी हुई है। दुर्भाग्य से यह सूची दिशाओं के क्रम से नहीं है अतएव यह निश्चय से नहीं कहा जा सकता कि वे देश कौन से और कहाँ हैं अथवा थे।

सात कुल-पर्वत—महाभारत में हिमालय के अतिरिक्त भारतवर्ष के सात मुख्य पर्वत ये बतलाये गये हैं—

(१) महेन्द्र पर्वत—यह पूर्व में है। इसी से महानदा निकलती है। इसी से मिले हुए पूर्व ओर के घाट हैं। (२) मलय पर्वत—यह पूर्वी घाट और पश्चिमी घाट को जोड़ता है। इसमें नील गिरि नामक बड़ा शिखर है। (३) सह्य पवत (सह्याद्रि) यह महाराष्ट्र में है। इसकी श्रेणी त्र्यम्बकेश्वर से मलाबार तक चली गई है। (४) शुक्तिमान्—पता नहीं यह कौन सा पर्वत है। शायद काठियावाड़ के पर्वत की श्रेणी हो जिसमें गिरनार है। (५) ऋक्षवान्—कदाचित् राजपूताने के अरावली पर्वत की श्रेणी हो। इसका मुख्य शिखर आबू (अर्बुद) पहाड़ है। इसका उल्लेख वनपर्व में हिमालय पुत्र अर्बुद के नाम से है। (६) विन्ध्य पर्वत प्रसिद्ध ही है। (७) पारियात्र—हमारे मत से यह सिंधु नदी के आगे का पर्वत होना चाहिए। आजकल इसका नाम सुलेमान है। रामायण में पारियात्र सिन्धु नदी के आगे बतलाया गया है। इन मुख्य सात कुल पर्वतों के सिवा महाभारत में रैवतक पर्वत का नाम आया है। यह द्वारका के पास है और शुक्तिमान् पर्वत की शाखा होगा। इसके सिवा नर्मदा और ताप्ती के बीच के सतपुड़ा का भी उल्लेख पाया जाता है। हिमालय के गन्धमान और कैलास

के भीतर म्लेच्छ देश कौन से थे। कुल १५६ देश बतलाये गये हैं। दक्षिण में ५० देश और उत्तर में म्लेच्छ देश के अतिरिक्त २६ देश बतलाये गये हैं।

पूर्व ओर के देश—पहले हम कुरु से प्रारम्भ करते हैं। इसको उस सूची में कुरु पाञ्चाल कहा है। इसकी राजधानी हस्तिनापुर थी। यह गंगा के पश्चिमी किनारे पर थी। इसके पूर्व ओर पाञ्चालों का राज्य था। पाञ्चाल देश गंगा के उत्तर और दक्षिण ओर यमुना तक था। गंगा के उत्तर का भाग द्रोण ने जीतकर कौरव राज्य में मिला लिया और दक्षिण का भाग द्रुपद के लिए रक्खा। शामिल किये हुए भाग की राजधानी अहिच्छत्रपुरी थी। यह नगर पूर्वकाल में प्रसिद्ध था और वर्तमान रामपुर के पास था। द्रुपद के लिए जो भाग रह गया उसमें गंगा के तट पर माकन्दी और काम्पिल्य दो नगर थे।

इसके बाद पूर्व ओर दूसरा राज्य कोसल था। इसके भी दो भाग उत्तर कोसल और दक्षिण कोसल थे। उत्तर कोसल गंगा के उत्तर ओर और दक्षिण कोसल गंगा के दक्षिण विन्ध्य पर्वत तक था। अयोध्या के नष्ट होने पर उत्तर कोसल की राजधानी विन्ध्यपर्वत में कुशावती थी।

कोसल के पूर्व मिथिल राज्य था। उसकी पश्चिमी सीमा सदानीरा नदी था। मिथिल देश गंगा तक न था। गंगा के किनारे पर काशी का भी राज्य था। काशी के दक्षिण ओर मगधों का राज्य था। उनकी राजधानी राजगृह अथवा गिरिव्रज थी। इसको बदलकर पाटलिपुत्र राजधानी गंगा के किनारे महाभारत काल के पहले ही बसी थी, परन्तु महाभारत में उसका वर्णन नहीं है। यहाँ से आर्य देशों की सीमा समाप्त हुई। इसके पूर्व ओर मिश्र आर्य थे। ये देश अङ्ग, वङ्ग, कलिङ्ग नाम से प्रसिद्ध हैं। इनको आजकल चम्पारन, मुर्शिदाबाद और कटक कह सकते हैं। महाभारत की सूची में पौण्ड्र और सुह्म देश

ताम्रलिप्त नगर कलकत्ते के पास था। वह तामलक नाम से ग्रीक लोगों को मालूम था। ओड्र आजकल का उडीसा है। प्राग्ज्योतिष देश का राजा भगदत्त भारती युद्ध में मौजूद था। वह देश आजकल का आसाम है। सूची में इसका नाम नहीं है। कदाचित् सुह्म और पौंड्र की तरह यह भरतखण्ड के बाहर समझा जाता हो। यही हाल मणिपुर अथवा मणिमान् देश का है। यह शायद म्लेच्छ देश था। अंग, वंग, कलिंग के आगे जब अर्जुन अपने वनवास काल में जाने लगा तब उसके साथ के ब्राह्मण लौट पड़े थे।

दक्षिण ओर के देश—कुरुक्षेत्र से दक्षिण ओर चलने पर पहले शूरसेन देश मिलता है। इसकी राजधानी मथुरा यमुना के किनारे प्रसिद्ध ही है। इसके पश्चिम ओर मत्स्य देश था। यह जयपुर या अलवर के उत्तर में था। पाण्डव लोग अज्ञातवास के लिए पाञ्चाल देश के दक्षिण ओर से और दशार्ण देश के उत्तर ओर से यकृल्लोम और शूरसेन देशों में मृगों का शिकार करते हुए विराट देश को गये थे। इससे मालूम होता है कि दशार्ण और यकृल्लोम मत्स्य के आस-पास ही कहीं होंगे। इसके बाद कुन्तिभोजों का देश चर्मण्वती नदी पर था। यह ग्वालियर प्रान्त में है। फिर निषध देश आता है। यह वर्तमान नरवर प्रान्त है जो सेंधिया के अधिकार में है। इसके बाद अवन्ती देश (आजकल का मालवा) है। इसके आगे पयोष्णी और विदर्भ का उल्लेख है। विदर्भ देश कौन है, इसमें मतभेद है। विदर्भ की राजधानी भोजकट कही गई है। महाभारत के अस्पष्ट वचनों का विचार करते हुए हमें जान पड़ता है कि महाभारत-काल में बरार विदर्भ के नाम से प्रसिद्ध रहा होगा। विदर्भ के पास पूर्व ओर प्राक् कोसल नाम का देश बतलाया गया है। महाराष्ट्र का नाम महाभारत में नहीं है। उस समय उसके छोटे छोटे भाग थे। इन भागों के नाम रूपवाहित, भरमव, पाण्डुराष्ट्र गोपराष्ट्र और मल्लराष्ट्र हैं। इन राष्ट्रों के एक में मिल जाने से आगे चलकर महाराष्ट्र बना है।

गुजरात प्रान्त के देश उपर्युक्त सूची में आनर्त और स्वराष्ट्र हैं। सुराष्ट्र का नाम इस सूची में नहीं है, तथापि महाभारत में अनेक जगह उसका नाम आया है। सुराष्ट्र काठियावाड़ है और आनर्त है उत्तरी गुजरात। इस ओर के दो देश—परान्त और अपरान्त—महाभारत में उत्तर के देशों की गणना में शामिल किये गये हैं। अपरान्त उत्तर कोंकण है। इसका मुख्य शहर शूर्पारक (सोपारा) था। अपरान्त से मतलब वर्तमान थाना ज़िले से है। इस दृष्टि से परान्त को सूरत ज़िला समझना चाहिए। महाभारत में शूर्पारक भूमि को परशुरामक्षेत्र माना है। दक्षिण ओर के जो देश बतलाये गये हैं, उनमें कोंकण और मालव हैं। घाटमाथा के मावले लोग मालव होंगे।

दक्षिण के और प्रसिद्ध लोग चोल, द्रविड़, पाण्ड्य, केरल और माहिषक हैं। चोलमण्डल वर्तमान कारोमण्डल है। उसके दक्षिण ओर तजौर ही द्रविड़ है। पाण्ड्य आजकल का तिनेवली है। केरल त्रावन्कोर है और माहिष मैसूर है। वनवासी नाम भी अब तक प्रसिद्ध है। यह मैसूर के उत्तर ओर है। कहाड़ के पास कुन्तल देश होगा। इनके अतिरिक्त दक्षिण ओर की सूची के अन्य देशों के जो नाम हैं, उन्हें हम निश्चय से नहीं बता सकते कि वे कौन हैं। दक्षिण देश में आर्यों की बस्ती हो चुकी थी।

पश्चिम ओर के देश—पश्चिम ओर के देशों में सिन्धु, सौवीर और कच्छ देश हैं। सिन्धु आजकल का सिन्ध प्रान्त है। इसके और काठियावाड़ के बीच का प्रान्त सौवीर है, जो समुद्र के किनारे से मिला है। इसी में आजकल का कराची बन्दर होगा। कच्छ देश आजकल का कच्छ ही है। इसका नाम अनूप भी दिया गया है। गान्धार देश सिन्धु के आगे था, यह भी प्रसिद्ध है। इसकी राजधानी पेशावर है। पेशावर अथवा पुरुषपुर का नाम महाभारत में नहीं आया है। परन्तु गान्धार का नाम बराबर आया है। गान्धार के आगे काश्मीर है। इन देशों के इस पार कुरुक्षेत्र के पश्चिम ओर

मारवाड़ और पञ्जाब दो बड़े-बड़े प्रान्त हैं। इनमें महाभारत काल में सैकड़ों प्रकार के लोग होंगे। उनके बहुत से नाम भी महाभारत में जगह-जगह पाये जाते हैं। परन्तु सब का ठीक ठीक पता लगाना अत्यन्त कठिन है। मद्र देश के शाकल नगर का उल्लेख ग्रीक लोगों ने भी किया है। पञ्जाब के शाल्व और कैकय लोगों का, तक्षशिला नगरी का, वाल्हिकों का और क्षुद्रकों का नाम महाभारत में बार-बार आया है, परन्तु उपर्युक्त सूची में उनके नाम नहीं हैं।

उत्तर ओर के लोग—अर्जुन के दिग्विजय से उत्तर ओर के लोगों का कुछ वर्णन किया जा सकता है। कुविन्द, आनर्त तालकूट आदि देशों का वर्णन हो चुकने पर लिखा है कि शाकलद्वीप और सप्तद्वीपों के राजाओं से उसका युद्ध हुआ। फिर प्राग्ज्योतिष के राजा भगदत्त को उसने जीता। अन्तर्गिरि और बहिर्गिरि इत्यादि लोगों को भी उसने जीता। इसके बाद त्रिगर्त, दार्व, कोकनद काम्बोज, दरद आदि लोगों को जीता। काम्बोज और दरद अफ़ग़ानिस्तान और पश्चिमी तिब्बत के रहनेवाले लोग हैं। इसके आगे काल्पनिक लोगों का उल्लेख है। इस दिग्विजय म लिखा है कि अर्जुन हिमालय के उस पार हरिवर्ष में गया था। वहाँ उसे एक नगर मिला। वहाँ उसे द्वारपालों ने पीछे हटा दिया और कहा कि तुम इस नगर को नहीं जीत सकते। इसके आगे उत्तर कुरु प्रदेश में मनुष्य नहीं जा सकता। इससे जान पड़ता है कि तिब्बत में

सी है। ऋग्वेद के दसवें मण्डल के नदीसूक्त में नदियाँ पूर्व ओर से पश्चिम की ओर बतलाई गई हैं। पहले गङ्गा, उसके पश्चिम में यमुना, बाद को सरस्वती, फिर शुतुद्री, इसके बाद परुष्णी, फिर असिक्नी, तदनन्तर मरुत्वृधा और वितस्ता आती है। शुतुद्री सतलज, परुष्णी (ऐरावती), रावी, असिक्नी (विपाशा) व्यास और वितस्ता झेलम है। पता नहीं मरुत्वृधा कौन सी नदी है। सिन्धु प्रसिद्ध है। कुभा काबुल नदी है; और गोमती तथा सुवस्तु या स्वात सिन्धु के उस पार से मिलनेवाली नदियाँ हैं। सरयू नदी भी उस पार की है, पर वह सूक्त में नहीं कही गई। ज़ेन्द ग्रन्थ में उसका नाम 'हरयू' और सरस्वती का 'हरहवती' पाया जाता है। महाभारत में लिखा है कि सरस्वती हिमालय में उत्पन्न हुई और कुरुक्षेत्र से जाते-जाते मरुभूमि में गुप्त हो गई। चन्द्रभागा पञ्जाब की नदी है। वैदिक असिक्नी यही है। इसके सिवा सरस्वती और यमुना के बीच में दृशद्वती बताई गई है।

जब श्रीकृष्ण, भीम और अर्जुन मगध को जाने लगे तब उन्हें कुरुपाञ्चालों के पूर्व ओर गण्डकी, महाशोण और सदानीरा नदियाँ मिली थीं। ये बिहार प्रान्त की नदियाँ हैं। बंगाल में लौहित्या नदी ब्रह्मपुत्री है, पर ब्रह्मपुत्र का नाम नदियों की सूची में नहीं है। कौशिकी नदी बंगाल की जान पड़ती है। तीर्थ वर्णन में गया के पास फल्गु नदी आई है परन्तु सूची में इसका नाम नहीं है। करतोया बंगाल की नदी है।

अब हम दक्षिण की नदियों की ओर आते हैं। प्रथम गङ्गा में मिलनेवाली यमुना नदी है। यमुना में मिलनेवाली और मालवा से आनेवाली चर्मण्वती (चम्बल) भी प्रसिद्ध है। वेत्रवती (बेतवा) भी मालवा से आकर यमुना में गिरती है। सिन्धु अथवा काली सिन्धु भी मालवा की है। इसका नाम सूची में नहीं है। महानदी पूर्व ओर महेन्द्र पर्वत के पास से जाती है। बाहुदा नदी भी इसी जगह है।

विन्ध्य के दक्षिण नर्मदा नदी प्रसिद्ध ही है। इसी तरह पयोष्णी (तापी) भी। परन्तु तापी का नाम महाभारत में नहीं है। वैतरणी नदी पूर्व ओर जाकर पूर्व समुद्र में गिरती है। इधर महाराष्ट्र के सह्याद्रि से निकलकर पूर्व ओर जानेवाली नदियाँ गोदावरी, भीमरथी (भीमा) वेणा और कृष्णा बतलाई गई हैं। कृष्णावेणा एक अलग नदी बतलाई गई है। कृष्णा के दक्षिण कावेरी भी इन नदियों की सूची में है। इसके दक्षिण ताम्रपर्णी है, परन्तु उसका नाम सूची में नहीं है। हाँ तीर्थ वर्णन में उसका नाम आया है। और भी कितनी ही नदियों के नाम हैं परन्तु जिन नदियों का हम आजकल की नदियों से मेल नहीं मिला सके उनका उल्लेख यहाँ नहीं किया है।

महाभारत-काल के तीर्थ—पाण्डवों की तीर्थयात्रा के वर्णन के पहले तीर्थों की और दो सूचियाँ वनपर्व में दी गई हैं। पाण्डव जहाँ जहाँ गये थे उन स्थानों में जिनका आजकल के तीर्थस्थानों से हम मेल मिला सके हैं, उन्हीं का यहाँ उल्लेख किया है। महाभारत में लिखा है कि पाण्डव वनवास में कितने ही वनों में रहे। पहले वे काम्यक वन में रहे। वे भागीरथी के किनारे से कुरुक्षेत्र की ओर गये। सरस्वती, दृषद्वती और यमुना का दर्शन कर वे पश्चिम की ओर चले। गुलरू

प्रयाग से वे गया गये, जहाँ गयशिर नामक पर्वत और रेत से सुशोभित महानदी (फल्गु) है। यहाँ ब्रह्मवेदी भी पास ही है और अक्षयवट भी है। यही अक्षयवट स्थान श्राद्ध के लिए श्रेष्ठ कहा गया है। गया से चलकर वे मणिमती नामक दुर्जया नगरी में रहे। फिर अगस्त्याश्रम का दर्शन किया। नहीं कहा जा सकता कि यह तीर्थ कहाँ है; तथापि वर्णन से जान पड़ता है कि वह भागीरथी पर था। इसके बाद कौशिकी नदी का उल्लेख है। लिखा है कि कौशिकी पर विश्वामित्र ने तपस्या करके ब्राह्मणत्व प्राप्त किया था। यहाँ से वे नन्दा और अपर नन्दा नामक नदियों पर गये। फिर हेमकूट पर्वत पर गये। कौशिकी के पास उक्त नदियाँ होंगी। यहीं विभाण्डक पुत्र ऋष्यश्रृङ्ग का आश्रम है। कौशिकी से चलकर वे समुद्र पर गये। जिस जगह गङ्गा समुद्र मे ालती है, पाँच सौ नदियों के मध्य में उन्होंने समुद्र में स्नान किया। सिद्ध है कि गङ्गा समुद्र में सहस्र मुख से मिलती है। उसी का ल्लेख इन ५०० सौ नदियों से किया गया जान पड़ता है। यहाँ र्व ओर के तीर्थ समाप्त हुए। आश्चर्य है कि उनके काशी ाने का वर्णन नहीं है।

गङ्गामुख में स्नान कर पाण्डव कलिङ्ग देश को गये। वहाँ उन्हें ातरणी नदी मिली। यहाँ के पास ही महेन्द्र पर्वत है। उस पर्वत र परशुराम रहे हैं। प्रत्येक चतुर्दशी को उनका दर्शन होता है। ादनुसार उस दिन उनका दर्शन कर वे समुद्र के किनारे किनारे दक्षिण देशा की ओर चले। प्रशस्ता नदी देखकर वे गोदावरी पर आये। इसके बाद द्रविड देश में समुद्र के किनारे अगस्त्य तीर्थ पर आये। वहाँ से नारीतीर्थ को गये। उसके बाद अन्य पवित्र समुद्र-तीर्थों में (नाम नहीं बतलाये गये) जाने के बाद वे शूर्पारक क्षेत्र में पहुँचे। दक्षिण और पूर्व के इन तीर्थों के वर्णन में दो-तीन नाम हमको दिखाई नहीं देते। मुख्यत पूर्व ओर जगन्नाथपुरी का वर्णन नहीं है। न तो धौम्य के तीर्थ वर्णन में पुरी का नाम है और न नारद के तीर्थ वर्णन में ही। इसी प्रकार

रामेश्वर का नाम भी पाण्डवों की तीर्थयात्रा में नहीं आया है। इससे स्पष्ट होता है कि ये तीर्थ उस समय के बाद उत्पन्न हुए होंगे। पश्चिम-किनारे पर के गोकर्ण महाबलेश्वर का भी वर्णन नहीं किया गया है।

शूर्पारक से पाण्डव प्रभास तीर्थ गये। प्रभास काठियावाड़ में दक्षिण समुद्र के किनारे पर है। यहाँ उन्हें श्रीकृष्ण और यादव मिले। यहाँ से वे पयोष्णी नदी पर आये, फिर वैदूर्य पर्वत और नर्मदा नदी पर गये। नर्मदा में स्नान कर वे राजा शर्याति के यज्ञ-प्रदेश और च्यवन के आश्रम में आये। ये दोनों स्थान नर्मदा के तट पर ही थे। यहाँ से वे सिन्धुनद के तीर्थ पर गये और वहाँ के वन में जो सरोवर था उसे देखा। इसके बाद वे पुष्कर तीर्थ पर आये और आर्चिक पर्वत पर रहे। तदनन्तर गंगा, यमुना और सरस्वती के किनारे के तीर्थ उन्होंने देखे। पश्चिम-तीर्थयात्रा का वर्णन बहुत थोड़े में किया गया है। नारद की यात्रा में द्वारका का वर्णन है। पाण्डवों के समय में द्वारका को तीर्थत्व नहीं प्राप्त हुआ था।

उत्तर ओर के तीर्थ-वर्णन में युगन्धर, अच्युतस्थल और भूतलय नामक यमुना पर के तीर्थों का वर्णन है। प्लक्षावतरण तीर्थ का उल्लेख होने के बाद कुरुक्षेत्र में पाण्डवों के जाने का वर्णन है। इसके बाद विनाश और वहाँ से वे काश्मीर को गये। इसके आगे मानसरोवर को गये। वहाँ वितस्ता नदी के पास जला और उपजला नामक दो नदियाँ मिलीं। आगे मैनाक तथा श्वेतगिरि पर से वे कैलाश पर्वत पर गये। वहीं उनको भागीरथी का दर्शन हुआ। उसके बाद वे गन्धमादन पर पहुँचे और बदरी तथा नारायणाश्रम को देखा। फिर घटोत्कच की सहायता से आगे जाकर भागीरथी में स्नान किया और अपनी तीर्थयात्रा समाप्त की।

नगर—कौरवों की मुख्य राजधानी हस्तिनापुर गंगा के किनारे था। पाण्डवों की राजधानी इन्द्रप्रस्थ यमुना के पश्चिम किनारे प्रसिद्ध है। पाण्डवों ने जो पाँच ग्राम माँगे थे उनमें चार ये हैं—इन्द्र-थ, वृकप्रस्थ, माकन्दी और वारणावत। इन्द्रप्रस्थ के दक्षिण ुना के किनारे वृकप्रस्थ था। गंगा के किनारे एक माकन्दी और री यमुना के किनारे थी। चौथा वारणावत गंगा के किनारे था। स्यों की राजधानी विराट नगर था। इसके उत्तर और इन्द्रप्रस्थ के क्षिण उपप्लव्य नगर था। पाण्डवों ने युद्ध की तैयारी यहीं की थी। ूरसेनों की राजधानी मथुरा थी जो यमुना के किनारे है। द्रुपद की ाजधानी अहिच्छत्र थी। उसकी दूसरी राजधानी काम्पिल्य गंगा के श्चिम किनारे पर होगी। कान्यकुब्ज गाधि की राजधानी थी। यमुना े दक्षिण किनारे चेदि का राज्य था। इसकी राजधानी शुक्तिमती ी। वत्सों की राजधानी कौशाम्बी का नाम महाभारत में नहीं आया ;, तथापि वह ज्ञात थी। गंगा-यमुना के संगम पर प्रयाग प्रसिद्ध है। उत्तर ओर अयोध्या नगर था जो आजकल की अयोध्या है। मिथिला विदेह देश का नगर प्रसिद्ध है। अंग देश की चम्पा राजधानी का नाम महाभारत में आया है। भीष्म काशिराज की लड़कियाँ हरण कर ले गये थे, इससे जान पड़ता है कि काशी नगरी उस समय थी। मगधों की राजधानी राजगृह थी। मगध का पुण्यक्षेत्र गया भी प्रसिद्ध रहा होगा। संयुक्त प्रान्त के एकचक्रा का नाम पाया जाता है। बकासुर यहीं मारा गया था। यह गंगा के उत्तर ओर होगा। पंजाब के शाकल और तक्षशिला के नाम आये हैं। शाकल स्यालकोट के पास और तक्ष-शिला रावलपिंडी के पास था। बम्बई प्रान्त के द्वारका, भरुकच्छ (भड़ोंच) और शूर्पारक (सोपारा, बसई के पास) का उल्लेख हुआ है। विदर्भ के कौंडिन्यपुर और भोजकट का उल्लेख है।

तेरहवाँ प्रकरण

ज्योतिर्विषयक ज्ञान

महाभारत के समय तक ज्योतिषशास्त्र की बहुत कुछ जानकारी प्राप्त हो गई थी। इससे बहुत पूर्व वेदाङ्ग ज्योतिष का निर्माण हो चुका था और ज्योतिषशास्त्र में बहुत कुछ गणित शास्त्र का प्रवेश भी हो चुका था। सूर्य और चन्द्र का गणित कर लेने की पद्धति लोगों को मालूम हो गई थी। तथापि समग्र रीति से उसकी उन्नति महाभारत काल के बाद ही हुई।

भारती काल के आरम्भ में अर्थात् वैदिक काल के अन्त म भारतीय आर्यों को २७ नक्षत्रों का और उनके बीच चन्द्र की गति का अच्छा ज्ञान हो गया था। यजुर्वेद मे २७ नक्षत्र पठन किये गये हैं। उनके वही नाम महाभारत में भी आते हैं। चन्द्र प्रतिदिन सत्ताईस नक्षत्रों में से किसी न किसी एक नक्षत्र में रहता है, इसका भी संकेत है। आजकल जिस तरह तारीख़ का उपयोग किया जाता है, उसी तरह भारती काल में नक्षत्रों का उपयोग होता था। नक्षत्रों की संख्या एक हिसाब से कम पडती थी, क्योंकि चान्द्र मास अट्ठाईस दिनों से कुछ बडा है। अतएव किसी समय अट्ठाईस नक्षत्र मानने की रीति पड़ गई। यह अट्ठाईसवाँ अभिजित् नक्षत्र काल्पनिक था और उसके लिए काल्पनिक स्थान भी दिया गया था।

भारती काल के आरम्भ से लेकर महाभारत काल पर्यन्त नक्षत्रों के आरम्भ में कृत्तिका थी। ब्राह्मण ग्रन्थों में भी कृत्तिका ही प्रारम्भ में है। महाभारत के अनुशासनपर्व के ६४वें अध्याय में नक्षत्रों की सूची में आरम्भ मे, कृत्तिका ही है। परन्तु पूर्व काल में उनका प्रारम्भ मृगशीर्ष से होता था, फिर जब रोहिणी से प्रारम्भ हुआ, तब अवश्य ही शतभिषक् से कालारम्भ होता था। जब कृत्तिका से प्रारम्भ हुआ तब धनिष्ठाद काल हो गया। आजकल महाभारत काल की यह गणना छूट गई है।

पर अश्विनी से नक्षत्र का आरम्भ होने लगा है और कालारम्भ (वसन्तारम्भ) अभिजित् नक्षत्र से होता है। महाभारत काल के अनन्तर के इस समय में अश्विनादि गणना शुरू हुई और उसका मेल वृषभ आदि बारह राशियों से मिलाया गया। सन् ईस्वी के आरम्भ से लेकर अब तक वही नक्षत्र गणना चली आ रही है।

भिन्न भिन्न नक्षत्रों से चन्द्रमा की गति का ज्ञान महाभारत काल में अच्छा हो गया था। इसी तरह नक्षत्रों में सूर्य के गमन का भी ज्ञान उस समय ख़ासा हो गया था। रात का समय होने से नक्षत्रों में चन्द्रमा की गति देख लेना सहज है, परन्तु सूर्य की गति की ओर सूर्य के उदय होने के बाद ही यह देखकर ध्यान देना सम्भव है कि कौन कौन नक्षत्र क्षितिज पर देख पड़ते हैं। भारती आर्यों को यह बात भी ज्ञात थी कि नक्षत्र-मण्डल में सूर्य भी घूमता है। सूर्य के समग्र नक्षत्र मण्डल के चक्कर के लिए ३६५। दिन लगते हैं। इतने समय में चन्द्रमा ३५४ दिन में बारह परिक्रमाएँ करता है और कुछ दिन बच रहते हैं। यह स्पष्ट है कि महीनों की कल्पना चन्द्रमा के घूमने से होती है और अमावस्या पूर्णिमा से महीनों का ज्ञान होता है। वर्ष की कल्पना सूर्य की गति से है। इस तरह एक वर्ष में ११ महीने और ११। दिन होते हैं। इस रीति से यद्यपि चान्द्र महीनों से सौर वर्ष का मेल नहीं मिलता है, तथापि भारती आर्यों ने न तो चान्द्र महीनों को ही छोड़ा और न सौर वर्ष को ही; क्योंकि पूर्णिमा अमावस्या पर उनका विशेष यज्ञ होता था। और वे सौर वर्ष को भी छोड़ न सकते थे। कारण यह है कि ऋतुमान सौर वर्ष पर अवलम्बित है। इसके लिए उन्होंने चान्द्रमास के साथ सौर वर्ष का मेल मिलाने का प्रयत्न किया। महाभारत-काल में उन्हें मालूम न था कि सौर वर्ष ठीक ३६५। दिनों का है। नाक्षत्र सौर वर्ष लगभग ३६६ दिनों का होता है। इस हिसाब से उन्होंने पाँच वर्ष के युग की कल्पना की और इन पाँच वर्षों में दो महीने अधिक मिलाने की रीति चलाई। भारती-युद्ध के समय कुछ लोग ३५४ दिन का चान्द्र

वर्ष मानते रहे होंग और कुछ लोग ३६६ दिनों का सौर वर्ष। इसी कारण पाण्डवों ने तेरह वर्षों के वनवास और अज्ञात वास का पालन किया अथवा नहीं इस विषय का भीष्म ने निर्णय करते हुए कहा है कि हर पाँचवें साल दो महीने उत्पन्न होते हैं। इन दो महीनों को वेदाङ्ग ज्योतिष में पाँच वर्ष के युग में दो बार अलग अलग मिलाने की रीति कही गई है।

सूर्य चन्द्र की गति का ज्ञान हो जाने पर पाँच वर्षों का युग महाभारत काल में प्रचलित था। इनकी सूक्ष्म गणना के लिए समय के जो सूक्ष्म विभाग किये गये थे, वे ये हैं—कला, काष्ठा, मुहूर्त, दिन, पक्ष, महीना, ऋतु, वर्ष और युग। इनका कोष्ठक भी महाभारत के शान्तिपर्व में है।

वैदिक काल म प्रचलित छ दिनों के पृष्ठय नामक दण्डक का नाम महाभारत म नहीं है। यह दण्डक यज्ञ के लिए वैदिक काल में कल्पित किया गया था। ३५४ दिन का चान्द्र वर्ष, ३६० दिन का सामान्य वर्ष और ३६६ दिन का नाक्षत्र सौर वर्ष होता है। ये तीनों वर्ष वैदिक काल में माने गये थे और उनमें छ छ दिन का अन्तर था। साधारण महीने में ३० दिन होते हैं और छ दिन का यह विभाग यज्ञ क काम में बहुत उपयोगी होता था। यह छ दिन का पृष्ठय अर्थात् सप्ताह महाभारत के समय यज्ञ की प्रबलता

मनुष्य की आयु में सुख दुःख होने की कल्पना महाभारत के समय में पूर्ण रूप से चल चुकी थी। इसी कारण जन्मकाल का नक्षत्र देने की रीति महाभारत से दिखाई देती है।

महाभारत-काल मे नक्षत्रों के अनन्तर दिन का महत्त्व तिथि के ति बहुत कुछ था। तिथि का अर्थ है पक्ष भर के दिनों की संख्या। मग्र तिथियों में पञ्चमी, दशमी और पूर्णिमा शुभ मानी गई हैं और न्हें पूर्णा कहा गया है। महाभारत में कोई समाचार कहते समय ततना उपयोग नक्षत्रों का किया गया है, उतना तिथियों का नहीं ाया जाता है। फिर भी कुछ स्थलों पर तिथियों का उल्लेख है। यह लेखा है कि विराट नगर में गो ग्रहण के लिए सुशर्मा तो सप्तमी को ाया और कौरव गये अष्टमी को। स्कन्द को देवसेना का आधिपत्य पञ्चमी को दिया गया और षष्ठी को तारकासुर का पराभव हुआ। परन्तु यह नहीं बतलाया गया कि ये घटनाएँ किस महीने और किस पक्ष में हुईं। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि पक्ष दो थे—एक शुक्ल और दूसरा कृष्ण। शुक्ल को पहला और कृष्ण को दूसरा पक्ष मानने की प्रथा महाभारत-काल में रही होगी।

साधारण रीति से महीना ३० दिन का माना जाता था और प्रत्येक पखवाड़े में पन्द्रह तिथियाँ मानी जाती थीं। तिथियों के नाम प्रतिपदा, द्वितीया आदि संख्या पर थे। परन्तु चन्द्र का सूर्य से सङ्गम उन्तीस दिन में और कभी-कभी अट्ठाईस दिन में ही हो जाता है, इस कारण एक-आध पखवाड़े में तिथियाँ घट जाती थीं अथवा कभी-कभी एक तिथि अधिक भी हो जाती थी। चन्द्र का ग्रह-गणित जिस समय मालूम न था, उस समय पहले से समझ मे न आता था कि किस पखवाड़े में कितनी तिथियाँ होंगी और यह बात अन्त में प्रत्यक्ष अनुभव के भरोसे ही छोड़नी पड़ती थी। भीष्मपर्व के आरम्भ मे धृतराष्ट्र से व्यास कहते हैं—सोलहवीं तिथि को भी अमावास्या देखी है, परन्तु मैं तेरहवें दिन अमावास्या को

वर्ष मानते रहे होंगे और कुछ लोग ३६६ दिनों का सौर वर्ष। इसी कारण पाण्डवों ने तेरह वर्षों के वनवास और अज्ञात वास का पालन किया अथवा नहीं इस विषय का भीष्म ने निर्णय करते हुए कहा है कि हर पाँचवें साल दो महीने उत्पन्न होते हैं। इन दो महीनों को वेदांग ज्योतिष में पाँच वर्ष के युग में दो बार अलग अलग मिलाने की रीति कही गई है।

सूर्य चन्द्र की गति का ज्ञान हो जाने पर पाँच वर्षों का युग महाभारत काल म प्रचलित था। इनकी सूक्ष्म गणना के लिए समय के जो सूक्ष्म विभाग किये गये थे वे ये हैं—कला, काष्ठा, मुहूर्त दिन, पक्ष, महीना, ऋतु, वर्ष और युग। इनका कोष्ठक भी महाभारत के शान्तिपर्व में है।

वैदिक काल म प्रचलित छ दिनों के पृष्ठ्य नामक दण्डक का नाम महाभारत में नहीं है। यह दण्डक यज्ञ के लिए वैदिक काल में कल्पित किया गया था। ३५४ दिन का चान्द्र वर्ष, ३६० दिन का सामान्य वर्ष और ३६६ दिन का नाक्षत्र सौर वर्ष होता है। ये तीनों वर्ष वैदिक काल में माने गये थे और उनमें छ छः दिन का अन्तर था। साधारण महीने में ३० दिन होते हैं और छ दिन का यह विभाग यज्ञ क काम में बहुत उपयोगी होता था। यह छ दिन का पृष्ठ्य अर्थात् सप्ताह महाभारत के समय यज्ञ की प्रबलता

मनुष्य की आयु में सुख दुःख होने की कल्पना महाभारत के समय म पूर्ण रूप से चल चुकी थी। इसी कारण जन्मकाल का नक्षत्र देने की रीति महाभारत से दिखाई देती है।

महाभारत काल में नक्षत्रों के अनन्तर दिन का महत्त्व तिथि के नाते बहुत कुछ था। तिथि का अर्थ है पक्ष भर के दिनों की संख्या। समग्र तिथियों में पञ्चमी, दशमी और पूर्णिमा शुभ मानी गई हैं और इन्हें पूर्णा कहा गया है। महाभारत में कोई समाचार कहते समय जितना उपयोग नक्षत्रों का किया गया है, उतना तिथियों का नहीं पाया जाता है। फिर भी कुछ स्थलों पर तिथियों का उल्लेख है। यह लिखा है कि विराट नगर मे गो ग्रहण के लिए सुशर्मा तो सप्तमी को गया और कौरव गये अष्टमी को। स्कन्द को देवसेना का आधिपत्य पञ्चमी को दिया गया और षष्ठी को तारकासुर का पराभव हुआ। परन्तु यह नही बतलाया गया कि ये घटनाएँ किस महीने और किस पक्ष में हुई। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि पक्ष दो थे—एक शुक्र और दूसरा कृष्ण। शुक्ल को पहला और कृष्ण को दूसरा पक्ष मानने की प्रथा महाभारत-काल म रही होगी।

साधारण रीति से महीना ३० दिन का माना जाता था और प्रत्येक पखवाड़े में पन्द्रह तिथियाँ मानी जाती थीं। तिथियों के नाम प्रतिपदा, द्वितीया आदि संख्या पर थे। परन्तु चन्द्र का सूर्य से संगम उन्तीस दिन में और कभी कभी अट्ठाईस दिन म ही हो जाता है, इस कारण एक-आध पखवाड़े में तिथियाँ घट जाती थीं अथवा कभी-कभी एक तिथि अधिक भी हो जाता थी। चन्द्र का ग्रह-गणित जिस समय मालूम न था, उस समय पहले से समझ में न आता था कि किस पखवाड़े में कितनी तिथियाँ होंगी और यह बात अन्त में प्रत्यक्ष अनुभव के भरोसे ही छोड़नी पड़ती थी। भीष्मपर्व के आरम्भ म धृतराष्ट्र से व्यास कहते हैं—सोलहवीं तिथि को भी अमावास्या देखी है, परन्तु मैं तेर[illegible] दिन

नहीं मानता। इससे सिद्ध है कि भारती युद्ध के समय तिथियों के निश्चित किये जाने का गणित उत्पन्न न हुआ था।

कुल महीने बारह हैं और महाभारत के समय उनके वही नाम थे जो आजकल प्रचलित हैं। जिस नक्षत्र पर पूर्णिमा को चन्द्रमा आता है उस नक्षत्र का नाम महीने को देकर प्राचीन काल में महीनों के नाम रक्खे गये थे। उनका आरम्भ मार्गशीर्ष से होता था, आजकल की तरह चैत्र से नहीं। मार्गशीर्ष को आग्रहायण कहा है। अनुशासनपर्व में प्रत्येक महीने में उपवास करने का फल कहा है। उसमें भी महीनों का प्रारम्भ मार्गशीर्ष से ही है। गीता में भी 'महीनों में मार्गशीर्ष हूँ' कहा है। इससे जान पडता है कि भारती काल में महीनों के आरम्भ में मार्गशीर्ष होना चाहिए। ब्राह्मण ग्रन्थों और यजु संहिता में महीनों के जो अन्य नाम हैं वे महाभारत में कहीं नहीं देख पडते, यद्यपि भारती युद्ध के समय यजुर्वेद के महीनों के नाम अरुण अरुणज आदि प्रचलित थे। भारतीकाल में मार्गशीर्षादि का प्रचार हो जाने से वे दुर्बोध हो गये होंगे, अतएव सौति के ग्रन्थ से वे निकाल दिये गये होंगे।

ऋतुएँ वैदिक हैं और गिनती में छः थीं। महाभारत के समय वही प्रचलित थीं। वे वसन्त आदि थीं। गीता में 'महीनों में मार्गशीर्ष और ऋतुओं में वसन्त हूँ' कहा है। अर्थात् ऋतुओं के आरम्भ में वसन्त और महीनों के आरम्भ में मार्गशीर्ष था। पर इन दोनों बातों का मेल नहीं मिलता है। वस्तुतः ये छहों ऋतुएँ हिन्दुस्तान के बाहर की हैं और वैदिक कालीन हैं। परन्तु उनकी वही गणना महाभारत काल तक रही और अब भी चैत्रादि गणना के साथ चल रही है। मार्गशीर्षादि गणना और नाम भारती काल में उत्पन्न हुए, पर उनका मेल ऋतुओं के साथ नहीं किया गया। फलतः महाभारत काल से लेकर अब तक साधारण रीति से एक महीना पीछे हट गई है।

सूर्य जब बिलकुल दक्षिण में चला जाय तब उस बिन्दु से अवधि की गणना करते हुए फिर उस बिन्दु पर दुबारा सूर्य के आने का समय देखकर सौर वर्ष की ठीक-ठीक अवधि स्थिर की जा सकती है। इस प्रकार की माप और गणना करने की आवश्यकता, वार्षिक सत्र के कारण, भारती आर्यों को होती थी और इस कारण वर्ष की ठीक जानकारी उन्हें प्राप्त हो गई थी। वर्ष के उत्तरायण और दक्षिणायन दो भाग थे और इन दो भागों का मध्यबिन्दु अर्थात् विषुव का दिन उन्हें ज्ञात था। प्राचीन काल में यह माना जाता था कि उत्तरायण में मृत्यु होने पर ब्रह्मवेत्ता लोग ब्रह्म को प्राप्त होते हैं। इसी से शर-पञ्जर पर पड़े हुए भीष्म देह त्यागने के लिए उत्तरायण की बाट जोह रहे थे। महाभारत के समय उत्तरायण उस समय को कहते थे जब सूर्य बिलकुल दक्षिण दिशा में जाकर वहाँ से लौटने लगता था, क्योंकि यह लिखा है कि सूर्य को उत्तर ओर आते देखकर युधिष्ठिर भीष्म के यहाँ जाने के लिए चले। इससे प्रकट है कि विषुव वृत्त पर सूर्य के आने से लेकर उत्तरायण मानने की प्रथा महाभारत काल में न थी। दूसरे महाभारत काल में उत्तरायण माघ महीने में हुआ करता था।

वर्ष में बारह चान्द्र महीने और कुछ अधिक दिन होते थे। इसी लिए पाँच वर्षों का युग मानकर उसमें दो महीने अधिक मिला देने की रीति महाभारत में वर्णित है। इन युगों के पाँच वर्ष भिन्न भिन्न नामों से वेदाङ्ग ज्योतिष और वेदों में कहे गये हैं। महाभारत में नाम संवत्सर, परिवत्सर और इदावत्सर आदि उल्लिखित हैं। इस पाँच वर्षों के युग की अपेक्षा बड़े युग की कल्पना भी महाभारत-काल में पूर्ण हो गई थी। इन चार बड़े युगों के नाम कृत, त्रेता, द्वापर और कलि

अर्थात् चतुर्युगों की वर्ष-संख्या बारह हज़ार वर्ष होती है। इन बारह हज़ारों का चतुर्युग अथवा महायुग या केवल युग होता था, उसके हज़ार युग का ब्रह्मदेव का एक दिन होता था। महाभारत-काल में ऐसी ही कल्पना थी। भारतीय ज्योतिःशास्त्र के आधुनिक ग्रन्थों में भी यही गणना ग्रहण की गई है। उनमें इतना और कहा गया है कि चतुर्युगों के बारह हज़ार वर्ष मानवीय नहीं, देवताओं के वर्ष हैं। मानवीय एक वर्ष = देवताओं का एक दिन और मनुष्यों के ३६० वर्ष = देवताओं का एक वर्ष। ज्योतिःशास्त्र के मत से ऐसा ही हिसाब निश्चित है। कुछ आधुनिक भारतीय विद्वानों की राय है कि भारतीय आर्यों की समझ से महाभारत काल में चतुर्युग बारह हज़ार मानवीय वर्षों का ही था। परन्तु कलियुग का एक हज़ार मानवीय वर्षों का है यह कदापि सम्भव नहीं। देवताओं का एक दिन मनुष्यों का एक वर्ष है, यह कल्पना बहुत पुरानी है। उत्तर में उत्तर ध्रुव में मेरु है। वहाँ छः महीने का दिन और इतने ही महीने की रात होने का अनुभव है। और कल्पना यह है कि देवता लोग मेरु पर रहते हैं। मनुस्मृति में कहा है कि उत्तरायण और दक्षिणायन देवताओं के दिन रात हैं और हज़ार चतुर्युगों का ब्रह्मा का एक दिन होता है। गीता में भी लिखा है कि ब्रह्मा की रात उतनी ही बड़ी होती है। इस गणना से देख पड़ता है कि महाभारत में जो बारह हज़ार वर्ष बतलाये गये हैं, वे देवताओं के वर्ष हैं, मनुष्यों के नहीं। वन पर्व में चतुर्युग के बारह हज़ार वर्ष लिखे हैं, वहाँ उनका दिव्य वर्ष ही अर्थ करना चाहिए।

कल्प की कल्पना बहुत पुरानी है। इसका अर्थ ब्रह्मदेव की उत्पन्न की हुई सृष्टि का काल है। गीता में यह काल एक हज़ार चतुर्युगों का है। इस कल्प की समय-मर्यादा ४,३२,००० (चतुर्युग) × १००० होती है, अर्थात् ४३,२० ००,००० वर्ष होती है। यह कल्पना इस समय के भूगर्भशास्त्र की वर्ष संख्या की कल्पना से बहुत कुछ मिलती जुलती है। इस कल्प की अवधि में भिन्न भिन्न मन्वन्तर महाभारत में

काल में भी माने गये थे। मनु की कल्पना भी बहुत पुरानी है। यह माना गया था कि कल्प की अवधि में भिन्न भिन्न मनु होते हैं। आधुनिक ज्योतिःशास्त्र के अनुसार एक कल्प में चौदह मनु रहते हैं। नहीं कह सकते कि चौदह मनु की कल्पना महाभारत काल मे थी या नहीं।

नक्षत्रों की सदा देख-भाल करनेवाले भारतीय आर्यों को यह बात पहले ही मालूम हो गई होगी कि नक्षत्रों में होकर ग्रहों की भी गति है। सूर्य चन्द्र के सिवा नक्षत्र मे सञ्चार करनेवाले ये ग्रह बुध, शुक्र, मगल, गुरु और शनि थे। महाभारत काल मे ग्रह-रूप से राहु का परिचय भली भाँति हो गया था। उस समय यह कल्पना भी थी कि कुछ ग्रह दुष्ट होते हैं। अकेला गुरु ही शुभ माना जाता था। कई एक दो ग्रहों और नक्षत्रों के योग अशुभ माने जाते थे। उस समय ग्रहों की गति बतलाई जाती थी और उनके फल नक्षत्रों पर से कहे जाते थे। ग्रहों की वक्र और वक्रानुवक्र गति महाभारत मे बतलाई गई है। श्वेत ग्रह अथवा धूमकेतु महाभारत के समय ज्ञात था और वह अत्यन्त अशुभ माना जाता था। इस श्वेत ग्रह से कितने ही काल्पनिक केतुओं की कल्पना महाभारत-काल मे हो गई थी। उस समय यह धारणा थी कि राहु क्रान्तिवृत्त पर घूमनेवाला, तमोमय और न देख पड़नेवाला ग्रह है। बिना इसके यह कथन सम्भव न होता कि राहु सूर्य के पास आता है। राहु की पुरानी कल्पना भी कि वह सूर्य-चन्द्र पर आक्रमण करनेवाला राक्षस है, महाभारत मे है। फलत चन्द्र-ग्रहण और सूर्य ग्रहण की ठीक कल्पना महाभारत के समय हो गई थी।

इस विवेचन से पाठकों को पता लग गया होगा कि भारती काल मे भारती आर्यों का ज्योतिर्विषयक ज्ञान कैसा था।

चौदहवाँ प्रकरण

साहित्य और शास्त्र

भारती काल के प्रारम्भ में भारतीय आर्य लोग संस्कृत भाषा बोलते थे पञ्जाब की स्त्रियों के भाषण में ग्राम्य भाषा के कुछ निन्द्य भेद थे। उन भेदों के जो उदाहरण कर्ण ने शल्य के संवाद में दिये हैं उनसे उपर्युक्त अनुमान पुष्ट होता है। धीरे धीरे महाभारत काल तक अनार्य लोग और उनके *मिश्रण से उत्पन्न हुए लोग समाज में बहुत बढ़ गये तथा* उनकी प्राकृत भाषाओं का महत्त्व हो गया। संस्कृत केवल विद्यापीठों और यज्ञशालाओं में रह गई। सौति ने जब महाभारत को वर्तमान रूप प्रदान किया तब जनसाधारण प्राकृत भाषाएँ बोलने लगे थे।

वैदिक साहित्य—महाभारत के समय वैदिक साहित्य क़रीब क़रीब सम्पूर्ण हो गया था। *महाभारत में लिखा है कि वेदों का* रचना अपान्तरतमा ऋषि ने की है और वेदों के विभिन्न भाग महाभारत कर्ता व्यास ने किये हैं।

वेद तीन हैं और कहीं कहीं चौथे अथर्व वेद का भी उल्लेख है। अनुशासनपर्व में कहा गया है कि तण्डि ऋषि ने यजुर्वेद का ताण्डव *ब्राह्मण शिवजी के प्रसाद से बनाया। शुक्ल यजुर्वेद और शतपथ का* कर्ता याज्ञवल्क्य है। उसने अपने मामा वैशम्पायन से यजुर्वेद पढ़ा था, परन्तु मामा से झगड़ा हो जाने पर उसने वह वेद वमन कर दिया और सूर्य की आराधना करके नवीन यजुर्वेद उत्पन्न किया।

वेद कहते हैं मन्त्र और ब्राह्मण को, ब्राह्मणों में ही उपनिषदों का *भी अन्तर्भाव होता है* तथापि कहीं कहीं उनका निर्देश अलग किया गया है। नहीं कह सकते कि महाभारत के समय कौन कौन उपनिषद् उपलब्ध थे। दशोपनिषद् बहुत करके महाभारत के पहले के ही होंगे। शान्तिपर्व में ऋग्वेद में २१००० शाखाएँ, सामवेद में १००० शाखाएँ तथा यजुर्वेद में १०१ शाखाएँ होने का वर्णन किया गया है। परन्तु

आजकल वेदों की इतनी शाखाएँ उपलब्ध नहीं हैं। नारद के वर्णन में आगे 'पुराकल्पों' का उल्लेख हुआ है। इन पुराकल्पों का सम्बन्ध वेदों से ही है। इनमें वेदों में बतलाई हुई भिन्न भिन्न बातों का वर्णन होगा। आजकल इनका पता तक नहीं है। प्राचीन काल में पुराकल्प नामक भिन्न भिन्न छोटे छोटे ग्रन्थ रहे होंगे और उपनिषदों की भाँति वेदों के भाग समझे जाते होंगे।

(१) वेदाङ्ग व्याकरण—महाभारत में षडङ्ग का नाम बार-बार आता है। षडङ्ग छन्द, निरुक्त, शिक्षा, कल्प, व्याकरण और ज्योतिष हैं (आदि० अ० १७०)। इन सब शास्त्रों का अभ्यास महाभारत के समय प्रायः पूर्ण रीति से हो गया था। व्याकरण का अभ्यास पूर्ण रीति से होकर पाणिनि का महाव्याकरण भारत काल में ही बना था। परन्तु महाभारत में किसी व्याकरणकार का, यहाँ तक कि पाणिनि का भी नाम नहीं आया है। अनुशासनपर्व के १४वें अध्याय में एक शाकल्य सूत्रकार और दूसरे सावर्णि, दो ग्रन्थकारों का उल्लेख है। शाकल्य ने किस शास्त्र पर सूत्र बनाये यह बात नहीं बतलाई गई है। परन्तु शाकल्य का नाम पाणिनि के सूत्रों में आता है। इससे यह सूत्रकार पाणिनि से पुराना है।

(२) ज्योतिष—आज कल लगध का ग्रन्थ वेदाङ्ग ज्योतिष प्रसिद्ध है। वैदिक लोग इसी को पढते हैं। इनका भी नाम महाभारत में नहीं है तथापि ये महाभारत से पुराने हैं। दूसरे ज्योतिष-ग्रन्थकार गर्ग हैं। ज्योतिष में गर्ग पराशर का नाम प्रसिद्ध है। आज-कल की गर्ग संहिता का अस्तित्व महाभारत काल में भी रहा होगा।

(३) निरुक्त, (४) कल्प, (५) छन्द और ६) शिक्षा—यास्क का निरुक्त आज कल वेदाङ्ग के नाम से प्रसिद्ध है यास्क महाभारत काल से पूर्व के हैं। महाभारत में इनके नाम और शब्द-कोष का उल्लेख (शा० अ० ३४३) हुआ है। छन्द के कर्ता पिङ्गल हैं। वैदिक लोग इन्हीं का छन्दशास्त्र पढते हैं। पिङ्गल का उल्लेख महाभारत

म नहीं है, तो भी इनको महाभारत से पूर्व का मानना चाहिए। आज कल पाणिनि की 'शिक्षा' प्रसिद्ध है। परन्तु प्रत्येक वेद की शिक्षा भिन्न भिन्न है। महाभारत (शा० अ० ३४२) में उल्लेख है कि गालव ने 'शिक्षा' और 'क्रम' दो विषयों पर ग्रन्थ लिखे। कल्प के कर्ता अनेक हैं, पर उनका उल्लेख महाभारत में नहीं है। हाँ, निरे सूत्र शब्द का उल्लेख है।

इतिहास और पुराण—वैदिक साहित्य के बाद दूसरा साहित्य इतिहास और पुराणों का है। इतिहास में प्रत्यक्ष घटित बातें होती होंगी और पुराणों में दन्तकथाएँ तथा राजवंश। उपनिषदों से ज्ञात होता है कि पुराण उपनिषत्काल में भी थे। किन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि वे कितने थे। उपनिषदों में कहा गया है कि रामायण और महाभारत इतिहास हैं। अतएव यह मान लेने में कोई हानि नहीं है कि इनके मूल ग्रन्थ उस काल में रहे होंगे। इनके सिवा अन्य छोटे छोटे इतिहास भी रहे होंगे। महाभारत के चक्कर में आ जाने से उनका अस्तित्व लुप्त हो गया। शान्तिपर्व में कहा गया है कि लोमहर्षण सूत ही समस्त पुराणों के कथनकर्ता हैं। इन्हीं लोमहर्षण के पुत्र सौति ने महाभारत की कथा कही है। अर्थात् अठारह पुराण महाभारत के पहले के हैं। परन्तु वे आरम्भिक पुराण और आजकल के पुराण एक नहीं हैं। क्योंकि वनपर्व में वायु प्रोक्त कहकर कलियुग का जो वर्णन किया गया है उसमें और आजकल के वायु पुराण के वर्णन में अन्तर है।

न्याय शास्त्र—गौतम का न्याय शास्त्र महाभारत काल में प्रचलित रहा होगा। शान्तिपर्व के २१०वें अध्याय से जान पड़ता है कि न्याय शास्त्र महाभारत से पहले का है और उसका उपयोग वाद विवाद में हुआ करता था। जनक-सुलभा-संवाद से प्रकट होता है कि वक्तृत्व-शास्त्र भी महाभारत काल में प्रचलित रहा होगा।

धर्मशास्त्र—महाभारत में धर्मशास्त्र का कई बार उल्लेख हुआ है। उसमें नीतिशास्त्र का भी उल्लेख है। शान्तिपर्व के अध्याय ५९ में मानव धर्मशास्त्र का उल्लेख है। उसमें अनेक स्थलों में कहा

गया है कि समग्र नीति धर्म मुख्यत. शुक्र और बृहस्पति ने कहा है। शान्तिपर्व के ५८वें अध्याय में राजधर्म के प्रणेता मनु, भरद्वाज और गौरशिरस् बताये गये हैं। इन ग्रन्थों का अथवा बृहस्पति के नीति शास्त्र का आज कल पता नहीं है। परन्तु शुक्रनीति ग्रन्थ का अस्तित्व है।

राजनीति कहा गया है कि नारद को युद्धशास्त्र और गान्धर्व शास्त्र का भी ज्ञान था। युद्धशास्त्र के गजसूत्र, अश्वसूत्र रथसूत्र और नागरसूत्र आदि अनेक सूत्र थे। पूरा युद्धशास्त्र धनुर्वेद के नाम से प्रसिद्ध था। इस धनुर्वेद के प्रणेता भरद्वाज थे और गान्धर्व शास्त्र के नारद थ।

स्मृतियाँ और अन्य विषय—महाभारत काल में कोई भी स्मृति नहीं थी। मनु का धर्मशास्त्र कदाचित् महाभारत से पूर्व का हो क्योंकि मनु की आज्ञाओं का उल्लेख महाभारत में बार बार आता है।

अन्य शास्त्र और उल्लेख—उपनिषत् काल में गणित शास्त्र प्रसिद्ध था और महाभारत-काल तक उसका बहुत कुछ अभ्यास हो चुका था। जान पड़ता है कि नीतिशास्त्र का वर्णन करनेवाला एक शम्बर था। दो-तीन स्थानों में उसका नाम आया है। सख्यावाचक पद्म शब्द भी कई बार आया है। सभापर्व में सख्या के सभी शब्द आये हैं, जिनका आज-कल चलन है। ऐसा वर्णन है कि गणित के द्वारा पेड़ों के पत्ते और फल तक गिन लेने की कला ऋतुपर्ण को ज्ञात थी। शालिहोत्र में घोड़ों की शुभ अशुभ भँवरियों का भी वर्णन था। जरासन्ध की कुश्ती में दाँव पेंच के नाम आये हैं। इसी प्रकार थकावट न मालूम होने की ओषधि और उपाय वर्णित हैं। आकाश के भिन्न भिन्न वायुओं का भी वर्णन है। अनुशासन पर्व में बताया है कि भिन्न भिन्न प्रकार के गन्ध (धूप) किस प्रकार तैयार किये जाते हैं। एक स्थान पर स्मृति शास्त्र का उल्लेख है जिसका उद्देश्य मनु और बौधायन के धर्मशास्त्रों से है। आपस्तम्ब धर्मशास्त्र आदि के छोटे छोटे ग्रन्थ

महाभारत के पहले थे। परन्तु महाभारत काल में भाष्य, नाटक, काव्य और आख्यायिका इत्यादि के ग्रन्थकार उत्पन्न नहीं हुए थे तथापि महाभारत में नाटक का, नाटक करनेवाले का और नट के स्त्री वेश धारण करने का उल्लेख है।

पन्द्रहवाँ प्रकरण

धर्म

भारती काल के प्रारम्भ में भारतीय आर्यों का धर्म वैदिक था। वैदिक धर्म के मुख्य दो अङ्ग थे ईश-स्तुति अथवा स्वाध्याय और यज्ञ। प्रत्येक मनुष्य को ये दोनों काम नित्य करने पड़ते थे। वैदिक धर्म में अनेक देवता हैं जो सृष्टि के भिन्न भिन्न भौतिक चमत्कार आदि के अधिष्ठाता-स्वरूप माने जाते हैं। इनमें इन्द्र, अग्नि, सूर्य और वरुण मुख्य हैं। यद्यपि भिन्न भिन्न देवता भिन्न भिन्न भौतिक शक्ति स्वरूप कल्पित किये गये हैं, तो भी समस्त देवताओं का एकीकरण करने की प्रवृत्ति भारतीय आर्यों में प्राचीन काल से ही थी। भारती युद्ध के समय ऋग्वेद सम्पूर्ण हो गया था। सामवेद और यजुर्वेद भी पूरे हो गये थे। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य तीनों वर्ण वेद विद्या पढ़ते थे। कदाचित् वैश्य लोग अपने व्यवसाय की अड़चन के कारण महाभारत-काल में वेद विद्या पढ़ना धीरे धीरे छोड़ने लगे होंगे। भारती काल के अन्त में, महाभारत-काल के लगभग, क्षत्रिय लोग भी विद्या की ओर दुर्लक्ष्य करने लगे थे। उस समय वेद विद्या में क्षत्रियों का प्रवीण होना उनकी एक न्यूनता समझी जाने लगी थी। कर्ण ने युधिष्ठिर का उपहास करके कहा है—ब्राह्मणों के कर्म और यज्ञ करने में तुम प्रवीण हो परन्तु न तो तुम युद्ध करने के लिए आगे बढ़ो न वीरों का सामना ही करो।

वैदिक आह्निक, सन्ध्या और होम—प्रत्येक आर्य ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य प्रतिदिन सन्ध्या और यज्ञ किया करते थे। लिखा

कि भारती युद्ध के समय समस्त क्षत्रिय प्रातःस्नान करके सन्ध्या से
ही पाकर रणभूमि में जा डटते थे। एक बार रात में ही युद्ध छिड़
रा था। उसमें सूर्योदय होने पर दोनों तरफ़ के सैनिकों ने लड़ाई
द कर, रण भूमि में ही, सन्ध्या और सूर्योपस्थान किया था।

दूसरा कर्तव्य था अग्नि मे आहुति देना। प्रत्येक आर्य मनुष्य
पने घर में अग्नि स्थापित रखता था और उसमें नित्य हवन करता
ा। वैश्य भी प्रात और सायङ्काल सन्ध्या एव होम किया करते थे।

इसके अतिरिक्त क्षत्रिय और ब्राह्मण प्राचीन काल में अनेक नैमि-
त्तक वैदिक यज्ञ भी करते थे। अश्वमेध के सिवा पुण्डरीक, गवा-
यन, अतिरात्र, वाजपेय, अग्निजित् और वृहस्पति सव आदि नाम
महाभारत म मिलते हैं।

मूर्तिपूजा—श्रीकृष्ण और युधिष्ठिर की आह्निक क्रियाओं के
विस्तृत वर्णन मे भी किसी देवता की मूर्ति के पूजे जाने का वर्णन
नहीं है। इससे अनुमान होता है कि भारती युद्धकाल में और महा
भारत-काल पर्यन्त आर्यों के आह्निक धर्म में किसी प्रकार की देव पूजा
का समावेश नहीं हुआ था। कुछ लोगों की धारणा है कि बौद्ध-धर्म
के प्रचार के बाद यहाँ मूर्तिपूजा चल पड़ी। परन्तु शुरू-शुरू में बौद्ध-
धर्म में मूर्ति न रही होगी। बुद्धि की देह के अवशिष्ट केश, नख हड्डियाँ
आदि जो जिसे मिला उसने वही लेकर उसपर पत्थरों की ढेरी बनाई
और प्रारम्भ में उसी की पूजा शुरू हुई। महाभारत में ऐसे स्थानों को
'एडूक कहा गया है। वनपर्व में लिखा है कि कलियुग मे लोग एडूक
पूजने लगेंगे।

भक्ति से आरम्भ हुई थी। इसी तरह पाणिनि के सूत्र से भी ज्ञात होता है कि इन देवताओं की मूर्तियाँ महाभारत के पहले से ही प्रचलित रही होंगी। मन्दिर और मूर्तियाँ भले ही रही हों तथापि आर्यों के आह्निक कृत्य में अब तक देवताओं की पूजा न थी।

तेंतीस देवता—महाभारत के अनुशासनपर्व में तेंतीस देवताओं की गिनती इस प्रकार है—आठ वसु, ग्यारह रुद्र, बारह आदित्य और दो अश्विन्। इनमें प्रायः सभी वैदिक देवता आ जाते हैं।

शिव और विष्णु—भारती काल में वैदिक देवताओं में से शिव और विष्णु-सम्बन्धी तत्वज्ञान के दो पन्थ उत्पन्न हुए जिनके नाम पाशुपत और पञ्चरात्र हैं। अर्थात् महाभारत काल में इनका महत्त्व स्थापित हो गया था। ब्राह्मण काल में भी विष्णु देवताओं में श्रेष्ठ गिने जाते थे। वैदिक देवताओं में इन्द्र सबसे श्रेष्ठ है, परन्तु ब्राह्मण-काल में और भारती-काल में वे न जाने

दत्तात्रेय—महाभारत में वर्णन है कि ब्रह्मा विष्णु और महेश के काम क्रमशः उत्पत्ति, पालन और नाश हैं। इन तीनों का समावेश एक देवता अर्थात् दत्तात्रेय में हुआ है।

स्कन्द—महाभारत में स्कन्द का वर्णन अधिक है। स्कन्द वैदिक देवता नहीं हैं। वे शिव की संहार-शक्ति के अधिष्ठाता हैं।

दुर्गा—महाभारत में स्कन्द के बाद पूज्य दुर्गा देवी है। शक्ति अथवा दुर्गा की भक्ति महाभारत काल में खूब की जाती थी। भीष्म पर्व के दुर्गा स्तोत्र में विन्ध्यवासिनी देवी का भी उल्लेख है और श्री तथा सरस्वती का दुर्गा के साथ एकता का भाव दिखलाया गया है।

श्राद्ध—समस्त आर्य शाखाओं के इतिहास में पितरों की पूजा पाई जाती है। भारती आर्यों की श्राद्ध विधि का उल्लेख महाभारत में अनेक जगह है। अनुशासनपर्व में इसका विस्तृत वर्णन है। श्राद्ध में मांसान्न की आवश्यकता होती थी। श्राद्ध में मांसान्न ही परोसा जाता था।

श्राद्ध में ब्राह्मणभोजन के सिवा पितरों के लिए पिण्डदान करने की विधि भी होती है। अनुशासनपर्व में इसकी एक गुप्त विधि बतलाई गई है। वह यह कि पिता को दिया हुआ पिण्ड पानी में छोड़ना चाहिए दूसरे पिण्ड को श्राद्ध करनेवाले की स्त्री खाय और तीसरे पिण्ड को अग्नि में जला दे। आज-कल यह विधि प्रचलित नहीं है। इस विधि का रहस्य यह होगा कि श्राद्ध करनेवाले की स्त्री गर्भवती हो और उसके उदर में दादा (प्रपिता) जन्म ग्रहण करे। यह प्रसिद्ध ही है कि दूसरा पिण्ड दादा को दिया जाता है।

आलोकदान और बलिदान—महाभारत-काल में प्रत्येक गृहस्थ को नित्य विशेष स्थानों पर दीप, विशेष स्थानों पर भात के पिण्ड, विशेष स्थानों पर फूलों के हार रखने पड़ते थे। यह विधि देव, यक्ष और राक्षसों को सन्तुष्ट रखने के लिए करनी पड़ती थी। पहाड़ अथवा जङ्गल में धोखे के स्थान पर, मन्दिर में, चौराहों पर प्रति दिन दीप जलाने

और देवताओं, यक्षों और राक्षसों को बलि देनी पड़ती थी। यह विधि किये बिना भोजन करना अधर्म माना जाता था।

दान—महाभारत-काल में प्रतिदिन प्रत्येक मनुष्य को कुछ न कुछ दान करने का कड़ा नियम था। अनुशासनपर्व में सुवर्ण गाय तिल और अन्न आदि के दान का पुण्य फल विस्तार के साथ कहा गया है गाय के दान की प्रशंसा उपनिषदों में भी है। तिलदान भी बहुत प्रशस्त माना जाता था। इसके अतिरिक्त भूमिदान, कन्यादान और वस्त्रदान आदि का भी वर्णन किया गया है।

तप और उपवास—तप के भिन्न भिन्न भेद वर्णित हैं। इनमें उपवास श्रेष्ठ कहा गया है। उपवास करने की प्रवृत्ति उपनिषत् काल से है। अनुशासनपर्व में भिन्न भिन्न उपवासों का वर्णन है। कहा गया है कि एक ही बार लगातार तीन दिन से अधिक उपवास न करना चाहिए। ब्राह्मण और क्षत्रिय तीन दिन का उपवास करें और वैश्य तथा शूद्र एक दिन से अधिक उपवास न करें। दिन में एक ही बार भोजन करने को भक्त कहते हैं और यह भी उपवास में माना गया है। महीने भर का भी उपवास बतलाया गया है। उपवास में हर प्रकार का अन्न वर्ज्य है। पानी पीने का भी निषेध है।

महाभारत में पञ्चमी, षष्ठी और कृष्ण पक्ष की अष्टमी तथा चतुर्दशी उपवास की तिथियाँ हैं। आजकल की उपवास की तिथियाँ एकादशी, द्वादशी महाभारत में इस काम के लिए नहीं हैं। उपवास के सिवा वायु भक्षण आदि तप के और भी कठिन भेद महाभारत में वर्णित हैं।

जप—तप का एक प्रधान अङ्ग जप है। जप को गीता में यज्ञ बतलाया है। शान्तिपर्व में जप का वर्णन है जिसका तात्पर्य यह है कि जप है तो महाफल का देनेवाला परन्तु ज्ञानमार्ग से घटकर है

अहिंसा—भारतीय आर्य-धर्म के अनेक उदात्त तत्त्वों में एक महत्त्व का तत्त्व अहिंसा है। महाभारत-कालीन लोक-समाज में यह . पूर्णतया स्थापित हो चुका था कि किसी प्रकार की हिंसा करना

गाप है। परन्तु इस सम्बन्ध में महाभारत के भिन्न भिन्न आख्यानों मे मतभेद देख पड़ता है। वनपर्व के २०८वें अध्याय में कहा गया है कि प्राणियों का वध करनेवाला मनुष्य तो निमित्त मात्र है। अतिथियों तथा पोष्यवर्ग के भोजन में और पितरों की पूजा में मांस का उपयोग होने से धर्म होता है। यह भी कहा गया है कि यज्ञ में ब्राह्मण लोग पशुओं का वध करते हैं और मन्त्र के योग से वे पशु संस्कृत होकर स्वर्ग को जाते हैं। ठीक इसके विपरीत तुलाधार-जाजलि संवाद में यही काम निन्द्य और अधार्मिक कहे गये हैं। और यह कहा गया है कि जिन वेद-वचनों में हिंसा प्रयुक्त यज्ञ अथवा मांसान्न की विधि है वे वचन किसी खाऊ आदमी ने वेद में मिला दिये हैं। परन्तु यह बात निर्विवाद है कि महाभारत काल में हिंसा प्रयुक्त यज्ञ हुआ करते थे। तथापि हिंसा प्रयुक्त यज्ञों के सम्बन्ध में जन समुदाय में घृणा उत्पन्न हो गई थी विशेष कर विष्णु की भक्ति करनेवाले लोगों में मांस-भक्षण करने का महाभारत काल में निषेध माना जाता था।

अतिथि पूजा—अतिथि की पूजा करने और उसे भोजन देने के सम्बन्ध में महाभारत काल में बड़ा जोर दिया गया है धर्मशास्त्र की यह आज्ञा है कि जो अतिथि आवे उसे भोजन देना प्रत्येक गृहस्थ और वानप्रस्थ का कर्तव्य है। अतिथि सत्कार के पीछे जो अन्न शेष रह जाता है उसे विघस' कहते हैं और यह नियम था कि यह विघस खाकर गृहस्थ स्त्री पुरुषों को उदर निर्वाह करना चाहिए।

साधारण धर्म—सत्य, सरलता, क्रोध का अभाव अपने उपार्जित द्रव्य का अंश सबको देना, सुख दु खादि द्वन्द्व सहना शान्ति निर्मत्सरता अहिंसा, शुचिता, और इन्द्रिय निग्रह ये सब धर्म सबके लिए एक से कहे गये हैं। इस प्रकार आचार को धर्म का एक प्रधान अङ्ग माना है। अनुशासनपर्व में आचार का विस्तृत वर्णन है। उसमें कहा है—साधु सन्तों को जो श्रेष्ठता मिलती है उसका कारण उनका सदाचार ही है। मनुष्य को न कभी झूठ बोलना चाहिए, न किसी प्राणी की हिंसा करनी चाहिए।

और देवताओं, यक्षों और राक्षसों को बलि देनी पड़ती थी। यह बि
किये बिना भोजन करना अधर्म माना जाता था।

दान—महाभारत काल में प्रतिदिन प्रत्येक मनुष्य को कुछ न कु
दान करने का कड़ा नियम था। अनुशासनपर्व में सुवर्ण गाय तिल औ
अन्न आदि के दान का पुण्य फल विस्तार के साथ कहा गया है गाय
के दान की प्रशंसा उपनिषदों में भी है। तिलदान भी बहुत प्रशस
माना जाता था। इसके अतिरिक्त भूमिदान, कन्यादान और वस्त्रदा
आदि का भी वर्णन किया गया है।

तप और उपवास—तप के भिन्न भिन्न भेद वर्णित हैं। इनमें
उपवास श्रेष्ठ कहा गया है। उपवास करने की प्रवृत्ति उपनिषत् काल
से है। अनुशासनपर्व में भिन्न भिन्न उपवासों का वर्णन है। कहा
गया है कि एक ही बार लगातार तीन दिन से अधिक उपवास न करना
चाहिए। ब्राह्मण और क्षत्रिय तीन दिन का उपवास करें और वैश्य तथा
शूद्र एक दिन से अधिक उपवास न करें। दिन में एक ही बार भोजन
करने को भक्त कहते हैं और यह भी उपवास में माना गया है। महीने
भर का भी उपवास बतलाया गया है। उपवास में हर प्रकार का अन्न
वर्ज्य है। पानी पीने का भी निषेध है।

महाभारत में पञ्चमी, षष्ठी और कृष्ण पक्ष की अष्टमी तथा चतुर्दशी
उपवास की तिथियाँ हैं। आजकल की उपवास की तिथियाँ एकादशी,
द्वादशी महाभारत में इस काम के लिए नहीं हैं। उपवास के सिवा
वायु भक्षण आदि तप के और भी कठिन भेद महाभारत में वर्णित हैं।

जप—तप का एक प्रधान अङ्ग जप है। जप को गीता में यज्ञ
बतलाया है। शान्तिपर्व में जप का वर्णन है जिसका तात्पर्य यह है
कि जप है तो महाफल का देनेवाला, परन्तु ज्ञानमार्ग से घटकर है।

अहिंसा—भारतीय आर्य-धर्म के अनेक उदात्त तत्त्वों में एक
का तत्त्व अहिंसा है। महाभारत-कालीन लोक-समाज में यह
पूर्णतया स्थापित हो चुका था कि किसी प्रकार की हिंसा करना

पाप है। परन्तु इस सम्बन्ध में महाभारत के भिन्न भिन्न आख्यानों मे मतभेद देख पड़ता है। वनपर्व के २०८वें अध्याय में कहा गया है कि प्राणियों का वध करनेवाला मनुष्य तो निमित्त मात्र है। अतिथियों तथा पोष्यवर्ग के भोजन मे और पितरों की पूजा में मास का उपयोग होने से धर्म होता है। यह भी कहा गया है कि यज्ञ मे ब्राह्मण लोग पशुओं का वध करते हैं और मन्त्र के योग से वे पशु सस्कृत होकर स्वर्ग को जाते हैं। ठीक इसके विपरीत तुलाधार-जाजलि सवाद में यही काम निन्द्य और अधार्मिक कहे गये हैं। और यह कहा गया है कि जिन वेद-वचनों मे हिंसा प्रयुक्त यज्ञ अथवा मासान्न की विधि है वे वचन किसी खाऊ आदमी ने वेद में मिला दिये हैं। परन्तु यह बात निर्विवाद है कि महाभारत काल में हिंसा प्रयुक्त यज्ञ हुआ करते थे। तथापि हिंसा प्रयुक्त यज्ञों के सम्बन्ध मे जन समुदाय में घृणा उत्पन्न हो गई थी विशेष कर विष्णु की भक्ति करनेवाले लोगों मे मास भक्षण करने का महाभारत काल में निषेध माना जाता था।

अतिथि पूजा—अतिथि की पूजा करने और उसे भोजन देने के सम्बन्ध मे महाभारत काल में बड़ा जोर दिया गया है धर्मशास्त्र की यह आज्ञा है कि जो अतिथि आवे उसे भोजन देना प्रत्येक गृहस्थ और वानप्रस्थ का कर्तव्य है। अतिथि-सत्कार के पीछे जो अन्न शेष रह जाता है उसे विघस' कहते हैं और यह नियम था कि यह विघस खाकर गृहस्थ स्त्री पुरुषों को उदर निर्वाह करना चाहिए।

साधारण धर्म—सत्य, सरलता, क्रोध का अभाव अपने उपार्जित द्रव्य का अश सबको देना, सुख दु खादि द्वन्द्व सहना, शान्ति निर्मत्सरता अहिंसा शुचिता और इन्द्रिय-निग्रह ये सब धर्म सबके लिए एक से कहे गये हैं। इस प्रकार आचार को धर्म का एक प्रधान अङ्ग माना है। अनुशासनपर्व में आचार का विस्तृत वर्णन है। उसमें कहा है—साधु सन्तों को जो श्रेष्ठता मिलती है उसका कारण उनका सदाचार ही है। मनुष्य को न कभी झूठ बोलना चाहिए, न किसी प्राणी की हिंसा करनी चाहिए

स्वर्ग और नरक की कल्पना—वेद में स्वर्ग का उल्लेख बार बार आता है, परन्तु उसम नरक या निरय अथवा यमलोक के सम्बन्ध में विशेष वर्णन नहीं है। स्वर्ग का अर्थ वह स्थान है, जहाँ पुण्यवान् लोग मरने के बाद जाते हैं। और वह स्थान निरय है जहाँ पापियों की आत्मा जाती है। स्वर्गारोहणपर्व में यह बतलाया गया है कि भारती काल में स्वर्ग और नरक की कैसी कल्पना थी युधिष्ठिर का आचरण अत्यन्त धार्मिक था अतएव उन्हें सदेह स्वर्ग जाने का सम्मान मिला।

अन्य लोक—स्वर्गलोक का कल्पना वैदिक काल से प्रचलित था। परन्तु उपनिषत् काल में ज्ञानमार्ग के विचार जैसे जैसे अधिक बढते गये, स्वर्ग की कल्पना भी पीछे रह गई। ब्रह्मवादी लोग यह मानने लगे कि मुक्त हुए पुरुषों की आत्मा परब्रह्म में तादात्म्य प्राप्त करके शाश्वत गति को पहुँचती है और फिर वहाँ से उसकी पुनरावृत्ति नहीं होती। गीता में भी स्वर्ग की इच्छा को हीन बतलाया है और सबसे श्रेष्ठ वह धाम' बताया गया है जहाँ 'जाकर लौटना नहीं पडता।' महाभारत काल में इन दोनों की गतियों के बीच कल्पित किये हुए वरुणलोक विष्णुलोक और ब्रह्मलोक इत्यादि अनेक भिन्न भिन्न लोक थे। इसी तरह पाताल में भी पृथ्वी के नीचे अनेक लोकों की कल्पना की गई थी।

प्रायश्चित्त—महाभारत काल म यह बात सर्वमान्य थी कि पाप के लिए प्रायश्चित्त है। उस काल में पञ्च महापातक माने जाते थ। वे पातक ब्रह्महत्या सुरापान, गुरुतल्पगमन हिरण्यस्तेय और ऐसे पापियों के साथ व्यवहार रखना। इनका वर्णन उपनिषदों में भी है। तप यज्ञ और दान—यही तीन रीतियाँ प्रायश्चित्त की वर्णित हैं। ब्रह्महत्या आदि महापातकों के लिए देहान्त प्रायश्चित्त बतलाया गया है। एक वर्ष तक आहार विहार का त्याग कर देने से स्त्रियाँ पाप मुक्त हो जाती हैं। एक महीने भर पानी तक न पीकर रहने से अथवा

ध के काम के लिए युद्ध में मारे जाने से भी पापमुक्ति हो जाती है। अणी माण्डव्य की कथा में यह नियम आया है कि चौदह वर्ष की अवस्था तक अपराध या पातक नहीं होता।

संस्कार—यह कहीं नहीं कहा गया है कि महाभारत काल में भिन्न भिन्न कितने सस्कार थे। जातकर्म सस्कार का नाम महाभारत में विशेषता से आया है। विवाह प्रौढावस्था में ही होते थे। जातकर्म के बाद चौल और उपनयन दोनों सस्कारों का उल्लेख महाभारत में है। परन्तु वहां इनका विशेष वर्णन नहीं है। उपनयन वास्तव में बालक को गुरु के घर पहुँचा देने की विधि थी। इसके बाद विवाह सस्कार है। विवाह के बाद दो सस्कार और हैं – वानप्रस्थ और सन्यास। शान्तिपर्व में इनका थोड़ा वर्णन है। और्ध्वदेहिक सस्कार अन्तिम है। प्राचीन समय में मन्त्रों के द्वारा शव को जलाने की विधि इस सस्कार में थी। शव को समारम्भ के साथ ले जाने और मृतक की अग्नि को आगे करके उसी अग्नि से उसको जलाने की विधि थी। यह कहा गया है कि युद्ध में काम आनेवाले के लिए मृतक-सस्कार की आवश्यकता नहीं थी। प्राचीन समय में अशौच अर्थात् मरने और उत्पन्न होने के विषय में सूतक मानने की विधि भी थी। शान्तिपर्व में कहा है कि अशौच या वृद्धिवाले के अन्न को दस दिन पूरे होने से पहले न खाना चाहिए। जो लड़ाई में मारे जायें उनका सूतक न मानना चाहिए, इस बात का भी उल्लेख है।

सोलहवाँ प्रकरण

तत्त्वज्ञान

पञ्च महाभूत – भारती काल के प्रारम्भ में तीन तत्त्वज्ञान अर्थात् भिन्न भिन्न रीति से जगत् के रहस्य का उद्घाटन करने के सिद्धान्त प्रचलित थे। वेदान्त मत और कपिल तथा चार्वाक के मत प्रारम्भ

ाध्य में नास्तिकों के जो तर्क हैं उनका स्वरूप शान्तिपर्व के पञ्च शख-
ानक संवाद में दिखाया गया है। उसमें पञ्चशिख ने कहा है कि जब
मनुष्य के मरने पर किसी भी प्रकार का कर्म नहीं होता तब यह सिद्ध
ोता है कि महाभूतों से कोई न कोई एक भिन्न पदार्थ देह में अवश्य
है। क्योंकि प्राणी के मरने पर पञ्चमहाभूत पहले की ही भाँति शरीर
में शेष रहते हैं। फिर श्वासोच्छ्वास आदि बन्द कैसे हो जाते हैं? ऐसी
दशा में चैतन्य का देह से भिन्न होना निश्चित है और यह चैतन्य
अचेतन जड़ से उत्पन्न नहीं हो सकता।

जीव अथवा आत्मा अमर है—कितने ही तत्त्व-ज्ञानियों का
यह मत होना स्वाभाविक है कि आत्मा शरीर के साथ ही मर जाता
है। परन्तु यह अत्यन्त उच्च सिद्धान्त कि आत्मा अमर है, भारतीय
तत्त्व-ज्ञानियों में स्थापित हो गया था। उपनिषदों में आत्मा के अमरत्व
के विषय में जगह-जगह वर्णन है। महाभारत में भी ऐसे वर्णन
हैं। अस्तु, नास्तिकों के अतिरिक्त भारतीय आर्यों के तत्त्व ज्ञानियों ने
यही स्वीकार किया है कि आत्मा है और वह अमर है।

आत्मा एक है या अनेक—सबसे प्राचीन मत कपिल का यह
था कि पुरुष और प्रकृति—ये वस्तुएँ, अर्थात् चेतन आत्मा और जड़
पञ्चमहाभूत या देह—ये दो अलग वस्तुएँ हैं। पुरुष स्वतन्त्र, अवर्णनीय
और अक्रिय है। वह प्रकृति की ओर देखता रहता है और उसके
देखने से प्रकृति में सारी क्रियाएँ उत्पन्न होती हैं। गौतम और कणाद
के भी सिद्धान्त महाभारत काल में प्रचलित हो गये थे। इनके मतानुसार
जीवात्मा शरीर से भिन्न और अणु परिमाण है। ये जीवात्माएँ असंख्य
और अमर हैं। प्रत्येक जीवात्मा भिन्न है, जो एक शरीर से दूसरे शरीर
में चला जाता है बौद्धमतानुसार आत्मा कितनी ही वस्तुओं का संघात
है, जो एक देह से दूसरी देह में भ्रमण करता रहता है। सम्पूर्ण
आस्तिक तत्त्वज्ञानियों का यह मत है कि प्रत्येक शरीर में जो आत्मा है
वह कुछ भिन्न नहीं है, किन्तु सब जगह एक ही आत्मा व्यापक रूप से

भरा हुआ है। यही कारण है कि कणाद गौतम अथवा बुद्ध के मत नास्तिक के समान त्याज्य माने गये हैं।

परमेश्वर—प्राचीन काल में भारतीय आर्यों ने इन्द्र वरुण सूर्य, सोम आदि अनेक देवता माने थे। परन्तु एक ईश्वर की कल्पना ऋग्वेदकाल में हो हो चुकी थी। उन्होंने यह सिद्धान्त प्रदर्शित कर दिया था कि अन्य सब देव उसी के स्वरूप हैं। उन्होंने यह कल्पना नहीं की थी कि अन्य देवता उसके नीचे हैं। परन्तु उस ईश्वर की कल्पना का मेल तात्विक अनुमान से नहीं किया जा सकता। इसी कठिनाई के कारण कितने ही भारतीय तत्त्वज्ञानियों ने ईश्वर या परमेश्वर की कल्पना ही छोड़ दी, अर्थात् वे यह मानते हैं कि ईश्वर नहीं है अथवा वे इस विषय का विचार ही नहीं करते कि ईश्वर है या नहीं।

उपनिषदों के आर्य ऋषियों ने यह माना है कि परमेश्वर जो सृष्टि करता है वह अपने से ही उत्पन्न करता है और प्रलय-काल में उसे फिर अपने में ही विलीन कर लेता है। सृष्टि और स्रष्टा, जगत् और ईश्वर प्रकृति और पुरुष भिन्न भिन्न नहीं हैं, किन्तु एक ही हैं—अर्थात् जगत् में द्वैत नहीं, अद्वैत है। यही उपनिषदों का परम सिद्धान्त है। और महाभारत में भी यही प्रतिपादित किया गया है और वेदान्त का यह सिद्धान्त स्वीकार किया गया है कि सम्पूर्ण जगत् में एक ही तत्त्व भरा है सारे जगत् में एक ही परमेश्वर भीतर-बाहर व्याप्त है।

सृष्टि क्यों उत्पन्न हुई—अद्वैतवादी वेदान्ती मानते हैं कि निष्क्रिय अनादि परब्रह्म से जड़ चेतनात्मक सब सृष्टि उत्पन्न हुई, किन्तु कपिल के सांख्यानुसार पुरुष के सान्निध्य से प्रकृति से जड़ चेतनात्मक सृष्टि उत्पन्न हुई। इस पर प्रश्न होता है कि जो परब्रह्म अक्रिय है उसमें विकार उत्पन्न ही कैसे होता है अथवा जब पुरुष और प्रकृति का सान्निध्य सदैव ही है तब सृष्टि कैसे उत्पन्न होनी चाहिए। तत्त्वज्ञान के इतिहास में यह प्रश्न अत्यन्त कठिन है

उपनिषदों में ऐसा वर्णन आया है कि "पहले केवल परब्रह्म ही था। उसके मन में आया कि मैं अनेक होऊँ—मैं प्रजा उत्पन्न करूँ।" अर्थात् अक्षय परमात्मा के पहले इच्छा उत्पन्न हुई। इस इच्छा के कारण उसने जगत् उत्पन्न किया। महाभारत मे भिन्न भिन्न जगह ऐसा सिद्धान्त प्रतिपादित किया गया है कि प्राय. उत्पत्ति और सहार का क्रम किसी न किसी नियम और काल से ही होता रहता है। गीता में यही बात एक दृष्टान्त से कही गई है वह यह कि जिस प्रकार जब सुबह होने का समय आता है उस समय धीरे धीरे अन्धकार में ससार प्रकाश में आकर दिखाई देने लगता है, उसी प्रकार सृष्टि के आरम्भ में अव्यक्त से भिन्न-भिन्न व्यक्ति उत्पन्न होते हैं। और सन्ध्याकाल के बाद जब रात आने लगती है तब जिस प्रकार ससार धीरे धीरे अदृश्य सा होता जाता है, उसी प्रकार सृष्टि के सहार काल में भिन्न-भिन्न व्यक्ति एक अव्यक्त में लय को प्राप्त होते हैं। अतएव यह नियम से और नियत काल से होनेवाला कार्य इच्छा का खेल नहीं है।

प्राण—आत्मा क्या पदार्थ है, उसका स्वरूप क्या है, उसके आगे की गति क्या है, आदि बातों के विषय में प्राचीन ऋषियों ने बहुत विचार किया है। उन्होने अपने विचार उपनिषदों में लिखे हैं। उन्हीं का विस्तार महाभारत में किया गया है। आत्मा ही सारे जगत् का चेतन करनेवाला पदार्थ है। परन्तु पाश्चात्य वैज्ञानिकों को अभी तक यह रहस्य नहीं मालूम हुआ है कि आत्मा अर्थात् जीव क्या पदार्थ है।

जीव का मुख्य लक्षण प्राण है, क्योंकि सम्पूर्ण जीवित वस्तुएँ श्वासोच्छ्वास करती हैं। अर्थात् प्राण कहते हैं जीव को और जीव कहते हैं आत्मा को। यह आत्मा ईश्वर-स्वरूप है, परब्रह्म का अश है। प्राण का भारतीय तत्त्वज्ञानियों ने खूब अध्ययन किया है तथा तर्क से उन्होंने उसके विषय में अनेक सिद्धान्त बाँधे हैं। प्राण के मुख्य पाँच भाग उन्होंने कल्पित किये हैं और उनके भिन्न भिन्न स्थान बतलाये हैं। वे हैं प्राण, व्यान, अपान, समान और उदान। प्राण

से मनुष्य जीवित रहता है, व्यान से भार वहन करता है, अपान से मल मूत्रोत्सर्ग करता है, समान से हृदय की क्रिया चलती है और उदान से उच्छ्वास अथवा भाषण होता है। परब्रह्म-स्वरूप से प्राण की प्रशंसा उपनिषदों और महाभारत में की गई है।

जीव का दूसरा लक्षण उष्णता अथवा अग्नि है। इसकी ओर भी भारतीय दार्शनिकों का ध्यान गया था। उन्होंने यह निश्चित किया है कि देह और सिर में अग्नि रहती है। वनपर्व में धर्मव्याध-संवाद में वर्णन किया गया है कि वायु का केन्द्रस्थान नाभि और अग्नि का सिर है। शरीर में तीसरा केन्द्रस्थान हृदय है। उसके चारों ओर नाड़ियाँ निकली हैं, जो सारे शरीर को अन्न-रस पहुँचाया करती हैं। और यह पोषण दस प्राणों के योग से होता है। महाभारत के प्रत्येक तत्त्वज्ञान के विचार में प्राण, नाड़ी और हृदय का वर्णन ज़रूर आता है।

इन्द्रिय ज्ञान—प्रारम्भ में ही तत्त्वज्ञानी को यह निश्चित करना आवश्यक होता है कि इन्द्रियजन्य ज्ञान कैसे होता है। उनके मत से सभी इन्द्रियों के पदार्थ-संयोग से होनेवाले ज्ञान के लिए मन की आवश्यकता है। मन शरीर में है और नाड़ी द्वारा सब इन्द्रियों में व्याप्त रहता है। इसी मन के द्वारा इन्द्रियों पर पदार्थ का जो सन्निकर्ष होता है वही बुद्धि में पहुँचता है और वहाँ ज्ञान उत्पन्न होगा। शान्तिपर्व के अध्याय ७७६ में यह माना है कि देह में *इन्द्रियाँ, चित्त, मन, बुद्धि* और आत्मा की परम्परा लगी हुई है। इसी परम्परा से ज्ञान होता है।

आत्मा का स्वरूप—भारतीय तत्त्वज्ञानियों ने यह बात स्वीकार की है कि चित्त, मन अथवा बुद्धि और पञ्चेन्द्रियाँ तथा पञ्चप्राण—ये सब जड़ अथवा अव्यक्त के ही भाग हैं। इनमें अपनी निज की किसी प्रकार की शक्ति नहीं है। इनके पीछे जब तक जीव है तभी तक इनकी क्रियाएँ होती हैं। ऐसी दशा में प्रश्न है कि यह जीव क्या वस्तु है। इस प्रश्न के आस पास सभी दार्शनिक चक्कर काट रहे हैं।

करना पड़ता है। महाभारत काल में यह बात मालूम थी कि वृक्षों में जीव है (शान्तिपर्व, अध्याय ८५ और १८४)।

लिङ्ग देह—भारतीय आर्यों ने यह कल्पना की है कि एक देह से दूसरी में संसरण करते हुए आत्मा के आसपास सूक्ष्म पञ्च महाभूतों का एक कोश रहता है और यह भी माना है कि इन सूक्ष्म भूतों के साथ ही सूक्ष्म पञ्चेन्द्रियाँ भी होती हैं। कहते हैं कि इन सब को मिलकर एक लिंगदेह होती है। ऐसी कल्पना है कि लिङ्गदेह सहित आत्मा हृदय के भीतर के आकाश में रहती है। यह हृदय का आकाश अंगुष्ठ के बराबर है, इसलिए यह कल्पना की गई है कि लिङ्ग देह भी अंगुष्ठ के बराबर है। उपनिषदों में भी कहा है कि हृदय में वेष्टित जीव अंगुष्ठ मात्र है। महाभारत में लिखा है कि वह आकाश के समान सूक्ष्म और मनुष्य दृष्टि के लिए अदृश्य है। हाँ, योगियों को वह दिखाई दे सकता है।

देवयान और पितृयाण—साधारणतया आत्मा शरीर से निकल कर चन्द्रलोक को जाता है। महाभारत में इसका विस्तार से वर्णन कहीं नहीं है। गीता में कहा है कि योगी का आत्मा उत्तरायण के मार्ग से सूर्यलोक को जाकर वहाँ से ब्रह्मलोक को जाता है। परन्तु अन्य पुण्यवान् प्राणियों का आत्मा दक्षिणायन के मार्ग से चन्द्रलोक जाकर फिर लौट आता है, अर्थात् मुक्त नहीं होता। उपनिषदों में यह भी कहा है कि चन्द्रलोक में आत्मा कुछ दिन तक निवास करता है। तत्त्वज्ञानियों का विचार है कि चन्द्रलोक पितरों का लोक है। वहाँ से लौटते हुए आत्मा का आकाश में, वहाँ से वायु में, वायु से पृथ्वी में, वहाँ से अन्न में और अन्न के द्वारा आहुति रूप से पुरुष के पेट में प्रवेश होता है।

ऊपर आत्मा के जाने के जिन दो मार्गों का उल्लेख है उनमें पहला देवयान है और दूसरा पितृयाण। भारतीय आस्तिक मतवादियों के अनुसार ब्रह्मलोक ही अन्तिम गति है। वहाँ से आत्मा नहीं लौटता।

विष्णुलोक अथवा वैकुण्ठ शङ्करलोक अथवा कैलास आदि अनेक लोक हैं। इन सब लोकों में पुण्य भोगने के बाद आत्मा लौट आता है।

अधोगति—देवयान और पितृयाण के अतिरिक्त एक तीसरा मार्ग है, जो पापी लोगों की आत्मा को प्राप्त होता है। ये आत्मा देह से निकलते ही किसी न किसी तिर्यक् योनि में जाते हैं। महाभारत में अनेक जगह इस बात का विवेचन किया गया है कि कौन सा पाप करने से कौन सी पापयोनि प्राप्त होती है।

आवागमन से मुक्ति—कपिल मतानुयायी यह मानते हैं कि मनुष्य को जब पचीस तत्त्वों का ज्ञान हो जाता है तब वह मोक्ष पाता है। जिस समय मनुष्य को यह अनुभव हो जाता है कि मैं प्रकृति से भिन्न होकर अकर्त्ता हूँ उस समय वह जन्म-मरण के चक्कर से मुक्त होता है। योगियों का मत है कि मन आत्मा को इन्द्रियों के द्वारा विषयों में फँसाता है। अतएव इन्द्रियों का अवरोध करके मन को स्वस्थ बैठाकर आत्मा को विषयोपभोग से निवृत्त करने पर मोक्ष मिलता है। वेदान्तियों का यह मत है कि आत्मा परब्रह्म का अंश है, परन्तु अज्ञान-वश वह इस बात को भूल जाता है। अज्ञान के नष्ट होने पर उसे यह ज्ञान हो जाता है कि मैं परब्रह्मस्वरूपी हूँ। तब मनुष्य मुक्त होता है।

परब्रह्म स्वरूप—परब्रह्म की कल्पना भारतीय आर्यों की ईश्वर-विषयक कल्पनाओं का अत्युच्च स्वरूप है। उपनिषदों में परब्रह्म का वक्तृत्व-पूर्ण उच्च वर्णन है, जिसका मनुष्य से अथवा सगुण स्वरूप से कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। महाभारत काल में निर्गुण उपासना बहुत पीछे हट गई थी, अतएव उपनिषदों की भाँति परब्रह्म के उच्च वर्णन महाभारत में नहीं हैं और न ब्रह्मानन्द में मग्न होनेवाले मुनियों के ही वर्णन हैं। फिर भी सनत्सुजातीय आख्यान में ब्रह्म का और ब्रह्म से ऐक्य पानेवाली स्थिति के सुख का वर्णन है।

मोक्ष-प्राप्ति—ईश्वर से जीवात्मा का पूर्ण तादात्म्य करना ही भारतीय आर्य तत्त्वज्ञान का अन्तिम ध्येय है और इसी का नाम मोक्ष

है। सनत्सुजातीय आख्यान में कहा गया है कि ससार छोड़कर अरण्य में जा निष्क्रिय बनकर परमेश्वर का चिन्तन करने से मोक्ष होता है। वेदान्त, सांख्य और योग का मोक्षमार्ग प्राय यही है। भिन्न भिन्न मतों का विचार करते हुए महाभारत काल में यही मत ग्राह्य किया गया है कि घर में रहने से मोक्ष नहीं मिलता।

वैराग्य और संसार-त्याग—चार्वाक के अतिरिक्त सभी भारतीय आर्य तत्त्वज्ञानी यही मानते हैं कि ससार में दुःख भरा हुआ है इस कारण वे ससार को छोड़ देने का उपदेश करते हैं। सांख्य मतवादी, योगी वेदान्ती, नैयायिक, बौद्ध, जैन सभी का यही विचार है कि इस ससार के सुख मिथ्या हैं और इसका वैभव क्षणिक है।

ोक्ष को प्राप्त होता है। गीता में इस विषय का विचार दैवी सम्पत्ति के नाम से किया गया है और वहाँ भी कहा गया है कि दैवी सम्पत्ति से मोक्ष प्राप्त होता है।

धर्माचरण मोक्षप्रद है—वेदान्त-ज्ञान और योग-साधन से जिस तरह मोक्ष की प्राप्ति होती है, उसी प्रकार संसार के नैतिक आचरण से भी मोक्ष मिलता है। कुछ लोगों की धारणा है कि नीति का आचरण वेदान्त ज्ञान के समान कठिन नहीं है; परन्तु ऐसी बात नहीं है। वनपर्व में युधिष्ठिर से द्रौपदी कहती है—तुम धर्म ही धर्म लिये बैठे हो और यहाँ जंगल में कष्ट भोग रहे हो; उधर अधर्मी कौरव आनन्द से हस्तिनापुर में राज्य कर रहे हैं। जिस धर्म से दुःख उत्पन्न होता है उसे धर्म कैसे कहें? युधिष्ठिर ने इसका उत्तर दिया—मैं जो धर्म का आचरण करता हूँ सो उससे होनेवाले सुख की प्राप्ति पर ध्यान देकर नहीं करता, किन्तु इस दृढ निश्चय के साथ करता हूँ कि धर्म धर्म है, इसलिए वह सेवन करने के योग्य है।

धर्म की व्याख्या—महाभारत में धर्म की व्याख्या यह की गई है—उत्कर्ष लोगों की धारणा (स्थिति) और लोगों की अहिंसा, यही धर्म के हेतु हैं। ये जहाँ सिद्ध नहीं होते वह धर्म नहीं है। श्रुति उक्त धर्म में भी इसका विचार करना योग्य है; क्योंकि श्रुति भी हर एक कर्म को करने की आज्ञा नहीं देती है।

सत्रहवाँ प्रकरण

भिन्न मतों का इतिहास

सांख्य, योग, पाञ्चरात्र, वेदान्त और पाशुपत, ये सनातन धर्म के पाँच भिन्न मत महाभारत के समय प्रसिद्ध थे। (शा० अ० ३४९)

(१) सांख्य मत—सब मतों में सांख्य मत बहुत प्राचीन है। किसी मत का निर्देश करते समय सांख्य का नाम महाभारत में पहले

आता है, परन्तु सांख्य की प्रसिद्धि दशोपनिषद्-काल के बाद हुई है कारण यह कि सांख्य का उल्लेख उपनिषदों में नहीं है। शान्तिपर्व में कपिल सांख्य के प्रवर्तक बताये गये हैं और वे गीता में सिद्ध' कहे गये हैं। सिद्ध से तात्पर्य उन लोगों का है जिन्होंने केवल तत्त्वज्ञान के बल से परमेश्वर की प्राप्ति की हो। गीता के अनुसार तत्त्वज्ञान-द्वारा सिद्ध पद प्राप्त करनेवाले पहले पुरुष कपिल ही हैं। प्राचीन वेद-विहित यज्ञों में गवालम्भ होता था। उसके विरुद्ध गाय के संवाद में (शा० अ० २६८ म) कपिल ने रुष्ट होकर कहा है—वाह रे वेद! और अपना स्पष्ट मत दिया है कि हिंसा-युक्त धर्म के लिए कहीं प्रमाण नहीं है। कपिल का मत वेद-विरुद्ध होते हुए भी महाभारत काल में आदरणीय था।

यह कहना कठिन है कि कपिल का सांख्य मत मूलतः क्या था। इस समय सांख्य के जो ग्रन्थ हैं वे महाभारत के पीछे के हैं। सांख्य का पुराना ग्रन्थ महाभारत ही है। उसमें पुराना भाग भगवद्गीता है। उपनिषदों में एक तत्त्व का प्रतिपादन किया गया है, परन्तु कपिल ने दो का किया है। इस प्रकार सांख्य और वेदान्त का आरम्भ से ही विरोध पैदा हुआ। सांख्य का पहला और मुख्य मत यह है कि जगत् में प्रकृति और पुरुष दो पदार्थ हैं। शान्तिपर्व (अ० ३१८) में कहा है कि ज्ञानकार लोग ऐसा कभी न समझें कि प्रकृति और आत्मा एक ही है। सांख्यों ने यह बतलाया कि पुरुष प्रकृति से भिन्न है, वह केवल द्रष्टा है, प्रकृति की प्रत्येक क्रिया या गुण से वह परे है। परन्तु यह निश्चित नहीं किया कि वह पुरुष ईश्वर है। इस प्रकार सांख्य निरीश्वरवादी है।

गीता से विदित होता है कि आत्मा का अमरत्व और निष्क्रियत्व कपिल के मत का तीसरा अङ्ग था और उसी में उसकी चौथी बात ज्ञान है। जब पुरुष को यह ज्ञान हो जायगा कि पुरुष प्रकृति से भिन्न है, सब क्रिया और सुख-दुःख प्रकृति में हैं तब वह मुक्त हो जायगा। सांख्यों का पाँचवाँ मत त्रिगुण सम्बन्धी है। ये गुण प्रकृति के हैं और पुरुष प्रकृति में रहकर इनका उपभोग करता है। (गीता अ० १३)।

साख्यों का चौबीस तत्त्वों का सिद्धान्त पहले से नहीं है। मूलत. उनके तत्त्व थे। महाभारत के भीष्म-स्तव मे पञ्चमहाभूत, दशेन्द्रिय और मन, यही सोलह गुण बतलाये हैं। ये सब मिलकर प्रकृति होती है। प्रकृति जड़ और चेतन है। इसका पुन' पृथक्करण किया जाय तो जड़ के पञ्चमहाभूत और चेतन की दस इन्द्रियाँ, यह सहज विभाग होता है। यही साँख्य के तत्त्वज्ञान की पहली सीढी होगी। बाद को सांख्य के तत्त्वज्ञानियों ने धीरे धीरे विचार की वृद्धि की और महाभारत के समय मे उसमें चौबीस तत्त्व हो गये। शान्तिपर्व (३१८ अ०) मे सांख्य मत के आचार्य जैगीषव्य असित, देवल, पराशर, वार्षगण्य, गार्ग्य, आसुरि, सनत्कुमार आदि का वर्णन है। अन्यत्र यह वर्णन है कि कपिल इनमे सबसे प्राचीन है।

महाभारत-काल में साख्य के चौबीस तत्त्व अधिकाश में मान्य हुए थे। यह भी माना गया था कि पुरुष अतत्त्व है तो भी गणना में वह पचीसवाँ है। प्रकृति, महत्, अहङ्कार और पाँच सूक्ष्म महाभूत—ये आठ मूलतत्त्व, तथा मन सहित दस इन्द्रियाँ, और पाँच स्थूल महाभूत—ये सब सोलह विकार कुल मिलाकर चौबीस होते हैं। इनका और पुरुष का अथवा पचीसवें तत्त्व का महाभारत में बार-बार उल्लेख है।

महाभारत के पश्चात् साख्यों को भारतीय आर्यों के आस्तिक तत्त्वज्ञान मे स्थान नहीं मिला। उनका मत निरीश्वरवादी था। इस दोष को दूर करने के लिए अर्वाचीन समय में साख्यसूत्र बनाये गये जिनमें साख्यों को ईश्वरवादी बनाया गया है। जनक-सुलभा-सवाद से जान पड़ता है कि साख्यवादी सन्यास के पक्ष में नहीं थे। धर्मध्वज जनक पञ्चशिख का शिष्य था। सन्यास न लेकर वह राज्य करता था। उसने कहा है कि राज्य करते समय भी मेरा नैष्कर्म्य बना हुआ है।

(२) योग—योग तत्त्वज्ञान बहुत पुराना है। चित्तवृत्ति-निरोध का योग उपनिषद् के समय से है। महाभारत में कहा गया है कि योग शास्त्र का कर्ता हिरण्यगर्भ है। अर्थात् पहले किसी एक ऋषि ने

इस शास्त्र का प्रतिपादन नहीं किया है। लोगों में सांख्य और योग वेद विद्या के तुल्य ही माने जाते थे। इसी से वे दोनों भगवद्गीता में समाविष्ट किये गये। शान्तिपर्व के ३१६वें अध्याय में योग का विस्तृत वर्णन है। योगशास्त्र के जो लक्षण पतञ्जलि ने बताये हैं अधिकांश में वही लक्षण उपर्युक्त वर्णन में आये हैं। पतञ्जलि के यम, नियम आदि आठ साधन तथा प्राणायामादि समाधि तक की क्रिया का वर्णन है। यह भी है कि योगी को अष्ट सिद्धियाँ भी होती हैं। परन्तु योगी की भिन्न भिन्न सिद्धियों की कल्पना जैसी महाभारत काल में पूर्णता को पहुँची थी, वैसी भगवद्गीता में नहीं दिखाई देती।

शान्तिपर्व के भिन्न भिन्न अध्यायों से जान पड़ता है कि महाभारत के समय योग शब्द का अर्थ ध्यान धारणात्मक योग था। जो योगशास्त्र आगे चलकर पतञ्जलि ने बनाया, प्राय वैसा योगशास्त्र सौति के सामने न था। बौद्ध, जैन सन्यासी आदि मानते थे कि सिद्धों को विलक्षण शक्ति प्राप्त होती है। योगी भी यही मानते थे। भगवद्गीता में योगी की सिद्धि की कहीं सूचना नहीं है। अतएव यह कल्पना गीता के बाद की और सौति के महाभारत-काल के पूर्व की होनी चाहिए। महाभारत में बतलाया गया है कि सिद्धि के ही पीछे लग जाने से योगी को अन्तिम कैवल्य की प्राप्ति न होगी। अनुशासनपर्व (अ० १४) में अणिमा महिमा, प्राप्ति सत्ता, तेज अविनाशिता—ये छ योग की सिद्धियाँ वर्णित हैं। इसमें सन्देह नहीं है कि योगी में कुछ विशेष सामर्थ्य के आने की कल्पना प्रारम्भ से ही है और इसी से बौद्ध, जैन आदि मतों ने भी योग का अवलम्बन किया है।

महाभारत के अनुसार योग और सांख्य एक ही हैं। इसी लिए उसमें कहा है कि योग में सांख्य के ही पचीस तत्त्व हैं। परन्तु पातञ्जल सूत्र में इसका उल्लेख नहीं है। सब तत्त्वज्ञानों का समन्वय करने का प्रयत्न महाभारत में किया गया है, इसी से उसमें उक्त उल्लेख किया गया है। यह ध्यान में रखना चाहिए कि परमात्मा को अलग मानने

से योग के छब्बीस तत्त्व होते हैं। इसके सिवा योग में व्यक्त का भी एक लक्षण अधिक बतलाया गया है।

महाभारत में योग की भी परम्परा दी गई है। प्रथम यह योग हिरण्यगर्भ ने वशिष्ठ को सिखाया, वशिष्ठ ने नारद को और नारद ने भीष्म को। शान्तिपर्व (अ० २५४) में शाण्डिल्य भी योग का आचार्य माना गया है।

(३) वेदान्त—उपनिषदों में वेदान्त के तत्त्वज्ञान का प्रतिपादन विस्तार से किया गया है। इस तत्त्वज्ञान के मुख्य-मुख्य अङ्ग उपनिषदों मे बतलाये गये हैं, इसी से इसे वेदान्त नाम मिला है। यह नाम भगवद्गीता के 'वेदान्तकृत' वाक्य में आया है। महाभारत-काल में वेदान्त का अर्थ औपनिषत् तत्त्वज्ञान निश्चित हो चुका था। इस तत्त्वज्ञान का आचार्य अपान्तरतमा या प्राचीनगर्भ है। कदाचित् भगवद्गीता मे बताया हुआ 'ब्रह्मसूत्र' इसी का होगा। उपनिषदों का तत्त्वज्ञान गीता को मान्य है, तथापि कुछ बातों मे वह आगे बढ गई है।

वेदान्त में ब्रह्म, अध्यात्म, अधिदैव तथा अधिभूत शब्द आते हैं। गीता मे इनकी व्याख्या की गई है, जो उपनिषदों के विवेचन के अनुसार है। गीता में क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ-ज्ञान भी उपनिषद् का एक प्रतिपाद्य विषय है। उपनिषदों में गुणों की बिलकुल कल्पना नहीं है। यह तत्त्व कि ब्रह्म ज्ञेय तथा निर्गुण है और वह जगत्सृष्टि के गुणों का भी भोक्ता है, उपनिषदों का है। उपनिषदों में ब्रह्म के ध्यान के लिए ओंकार, सूर्य या गायत्री मत्र आदि प्रतीक लेने का नियम बतलाया है। उपनिषदों का सन्यास पर अधिक ज़ोर है, साथ ही निष्काम कर्मपक्ष भी है। पुण्य और अपुण्य की निवृत्ति, शान्ति और सन्यास, यही वेदान्त का मुख्य आधार है। ज्ञान से ही मोक्ष मिलता है और जीवात्मा तथा परमात्मा अभिन्न हैं, यह बात भी उपनिषदों में है।

महाभारत के समय सांख्य तथा योग का इतना आदर था कि उनकी छाया उसके तत्त्वज्ञान के विवेचन पर पूर्णतया पड़ी हुई दिखाई

देखी है। इसके सिवा सांख्य और वेदान्त में ज्ञान का ही महत्त्व हो
से सौति ने कई जगह उनका अभेद माना है। पाठक को जान पड़ता
कि सौति के मन में यह कभी न आया होगा कि वेदान्त के अपने कुछ
विशिष्ट मत हैं। तथापि यह स्पष्ट है कि महाभारत-काल में वेदान्त-मत
ही मुख्य था और उसी के साथ अन्य मतों का समन्वय किया जाता
था। शान्तिपर्व के कुछ आख्यानों में इस तत्त्वज्ञान की चर्चा है तथा
यह बतलाया गया है कि सुख-दुःख, पुण्य-अपुण्य दोनों जब छूटेंगे तब
मोक्ष मिलेगा। वेदान्त तत्त्व का यह मत महाभारत-काल में निश्चित
हो गया था। परन्तु यह दिखाई देता है कि उस काल में कर्म त्याग
कर संन्यास लेने से अथवा कर्म करके गृहस्थाश्रम में रहकर ही मोक्ष
मिलने का प्रश्न वादग्रस्त और अनिश्चित था। तथापि यह मत
प्रतिपादित होने लगा था कि वर्णों में ब्राह्मण और ब्राह्मणों में संन्यासी
ही मोक्ष की प्राप्ति करते हैं। परन्तु इसके साथ ही यह बात भी मानी
जाती थी कि शास्त्र ने सब वर्णों और आश्रमों को स्वतन्त्रता दी है।

(४) पाञ्चरात्र—वेदान्त के बाद पाञ्चरात्र ही एक महत्त्व का
ज्ञान महाभारत के समय में था। वैदिक काल में यह बात मान्य हो
गई थी कि वैदिक देवताओं में विष्णु श्रेष्ठ हैं। अतएव वैष्णव धर्म का
मार्ग धीरे-धीरे बढ़ता गया और महाभारत-काल में उसे पाञ्चरात्र नाम
मिला। इस मत की नींव भगवद्गीता ने डाली थी और यह बात सर्व-
मान्य हुई थी कि श्रीकृष्ण विष्णु के अवतार हैं। इससे पाञ्चरात्र की
नींव श्रीकृष्ण की भक्ति है।

इस मत के मूल आधार नारायण हैं। स्वायम्भुव मन्वन्तर में
सनातन विश्वात्मा नारायण से नर, नारायण, हरि और कृष्ण ये चार
मूर्तियाँ उत्पन्न हुईं। नर-नारायण ऋषियों ने बदरिकाश्रम में तप
किया। नारद ने वहाँ जाकर उनसे प्रश्न किया। उस पर उन्होंने
नारद को पाञ्चरात्र-धर्म सुनाया। इस धर्म का पालन करनेवाला
पहला पुरुष उपरिचर राजा वसु था। चित्रशिखण्डी नाम के सात

[ऋ]षियों ने वेदों का निष्कर्ष निकालकर पाञ्चरात्र नाम का शास्त्र तैयार [कि]या। इस शास्त्र में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारों का विवेचन [है]। यह ग्रन्थ एक लाख श्लोकों का है। यह भी लिखा है कि हरि-[भ]क्त वसु उपरिचर राजा इस ग्रन्थ को बृहस्पति से सीखेगा। उसके [ब]ाद वह नष्ट हो जायगा (शा० अ० ३३४ से ३५१ तक)।

शान्तिपर्व के नारायण-आख्यान में पाञ्चरात्रधर्म का जो विवरण [दि]या गया है उससे उसका आधार भगवद्गीता नहीं जान पड़ता। [प]ाञ्चरात्र मत में अहिंसा धर्म की प्रधानता थी और वह वेदों और यज्ञों [क]ो भी मानता था। उक्त आख्यान में नारायण ने नारद से कहा है—[ज]ो नित्य, अजन्मा और शाश्वत है, जो चौबीस तत्त्वों से परे पचीसवाँ पुरुष है, उस सनातन पुरुष को वासुदेव कहते हैं। यही सर्वव्यापक है। प्रलयकाल में पृथ्वी जल में लीन होती है, जल अग्नि में, तेज वायु में, वायु आकाश में और आकाश अव्यक्त प्रकृति में और अव्यक्त प्रकृति पुरुष में लीन होती है। फिर उस वासुदेव के सिवा कुछ भी नहीं रहता। पञ्चमहाभूतों का शरीर बनता है। उसमें अदृश्य वासुदेव तुरन्त सूक्ष्म रूप से प्रवेश करता है। यह देहवर्ति जीव महासामर्थ्य है और शेष तथा सङ्कर्षण उसके नाम हैं। इस सङ्कर्षण से जो मन उत्पन्न होकर जीवन-मुक्तता पा सकता है और प्रलयकाल में जिसमें सब जीवों का लय होता है उस मन को प्रद्युम्न कहते हैं। इस मन से कर्ता, कार्य और कारण की उत्पत्ति है तथा इससे चराचर जगत् का निर्माण होता है। इसी को अनिरुद्ध और इसी को ईशान कहते हैं। सब कर्मों में व्यक्त होनेवाला अहङ्कार यही है। पाञ्चरात्र मत का यही सिद्धान्त है।

यह मान लेने में कोई हर्ज नहीं कि यह मत पहले सात्वत लोगों में उत्पन्न हुआ। सात्वत लोग श्रीकृष्ण के वंश के लोग हैं। इसी से इस मत को सात्वत कहते हैं। सात्वत वंश के लोगों में यह मत पहले निकला, अतएव उस वंश की पूज्य विभूतियाँ इस मत में आईं। श्रीकृष्ण के साथ बलदेव की भक्ति उत्पन्न हुई। महाभारत में एक जगह कहा

है कि बलदेव और श्रीकृष्ण विष्णु के समान ही अवतार हैं। (आदि अ० १९७)। जैन तथा बौद्ध ग्रन्थों म वासुदेव और बलदेव दो नाम ईश स्वरूपी धर्म प्रवर्तक के अर्थ में आये हैं।

शान्तिपर्व के ३३९वें अध्याय म नारायण ने नारद से यह भी कहा कि देवकार्य के लिए मैं सदैव अवतार लूँगा। यह कहकर दशावतारों क सक्षेप में कथन किया है। इससे प्रकट होता है कि दस अवतारों की कल्पन बहुत प्राचीन नहीं है। उसका आरम्भ नारायणी आख्यान से ही है। य निर्विवाद है कि यह दशावतार की कल्पना बौद्धधर्म की जय या पराजय होने के पूव की है, क्योंकि इन दस अवतारों में बुद्ध का नाम नहीं है।

पाञ्चरात्र मत में दशावतारों को छोड़कर हयशिरा नाम का विष्णु का एक और अवतार माना गया है। परन्तु यह अवतार पाञ्चरात्र में ही है। इसका सम्बन्ध वेद से है। पाञ्चरात्र मत में वेद को महत्त्व तो दिया ही गया है, साथ ही वैदिक यज्ञ आदि क्रियाएँ भी उसी तरह मान्य की गई हैं, परन्तु उसमें यज्ञ का अर्थ अहिंसा-युक्त वैष्णव यज्ञ है। पाञ्चरात्र-मत से सृष्टि की सब वस्तुएँ पाँच कारणों से उत्पन्न होती हैं। पुरुष, प्रकृति, स्वभाव, कर्म और दैव ही वे पाँच कारण हैं और ये अन्यत्र कहीं नहीं बतलाये गये हैं।

पाञ्चरात्र मत यद्यपि पीछे से उत्पन्न हुआ, तथापि पाणिनि से भी यह दिखाई देता है कि श्रीकृष्ण और अर्जुन की भक्ति का प्रचार बहुत पहले से है। इन दोनों को नर-नारायण कहने का सम्प्रदाय बहुत पुराना पाञ्चरात्र मत के पूर्व रहा होगा। मेगास्थिनीज़ के कथन से भी जान पड़ता है कि महाभारत काल में श्रीकृष्ण की भक्ति मुख्यत सात्वत लोगों में प्रचलित थी।

(५) पाशुपत मत—वेद और उपनिषदों में विष्णु और रुद्र दोनों देवता हैं। यह निर्विवाद है कि उपनिषत्काल के अनन्तर भारती काल में शङ्कर की परमेश्वर के रूप में उपासना प्रारम्भ हुई। इस स्वरूप की एकता वैदिक देवता रुद्र के साथ हो गई। यजुर्वेद में रुद्र

मे विशेष स्तुति है और यह क्षत्रियों का विशेष वेद है। धनुर्वेद यजुर्वेद का उपाङ्ग है। यह स्वाभाविक है कि क्षत्रियों और यजुर्वेद में शङ्कर की विशेष उपासना प्रारम्भ हुई होगी। कुछ आश्चर्य नहीं कि इसी कारण शङ्कर की भक्ति रूढ हो गई और महाभारत-काल में तत्त्वज्ञान में भी पञ्चरात्र के समान पाशुपत प्रचलित हो गया। यह तत्त्वज्ञान शान्तिपर्व के ३४९वें अध्याय की सूची में है।

पाशुपत-मत में पशुपति सब देवों में मुख्य है। वही सारी सृष्टि के उत्पन्न कर्ता हैं। इस मत में पशु का अर्थ है सारी सृष्टि। पशु अर्थात् ब्रह्मा से स्थावर तक सब पदार्थ। इसकी सगुण भक्ति के लिए कार्तिक स्वामी, पार्वती और नन्दिदेव भी शामिल किये जाते हैं और उनकी पूजा करने के कहा गया है। शङ्कर अष्टमूर्ति हैं—पञ्चमहाभूत, सूर्य, चन्द्र और पुरुष।

महाभारत में इस बात का वर्णन नहीं पाया जाता है कि पाशुपत-मत के अनुसार मुक्त जीव कौन सी गति को कैसे जाता है। कुछ उल्लेखों से हम यह मान सकेंगे कि कदाचित् वह कैलास में शङ्कर का गण होता है और वहाँ से कल्पान्त में शङ्कर के साथ मुक्त होता है।

पाशुपत मत में तप का विशेष महत्त्व है। लिखा है—कुछ लोग वायु भक्षण करते थे, कुछ लोग जल पर ही निर्वाह करते थे, कुछ लोग जप में निमग्न रहते थे, कोई योगाभ्यास से भगवच्चिन्तन करते थे, कोई कोई केवल धूम्रपान करते थे, कोई उष्णता का सेवन करते थे, कोई कोई दूध पीकर रहते थे, कोई कोई हाथों का उपयोग न करके गाय की तरह खाते-पीते थे और कोई पानी में पड़े रहते थे। उपमन्यु उपाख्यान में लिखा है कि शङ्कर भी तप करते हैं।

अनुशासनपर्व के १७वें अध्याय के अन्त में कहा है—ब्रह्मदेव ने यह गुह्य पहले शक्र को बतलाया, शक्र ने मृत्यु को, मृत्यु ने रुद्र को, रुद्र ने तण्डी को, तण्डी ने शुक्र को, शुक्र ने गौतम को, गौतम ने वैवस्वत मनु को, मनु ने यम को, यम ने नाचिकेत को, नाचिकेत ने मार्कण्डेय को

और मार्कण्डेय ने मुझ उपमन्यु को बतलाया। यह परम्परा सहस्र नाम स्तवन की है, तथापि हम मान सकते हैं कि यह पाशुपत मत की होगी।

पाशुपत तत्त्वज्ञान में जगत् के पाँच पदार्थ माने गये हैं। वे कार्य, कारण, योग, विधि और दु:ख, जिन्हें आचार्यों ने सूत्र भाष्य में बतलाया है। परन्तु महाभारत में उनका उल्लेख नहीं है।

इन सब तत्त्वज्ञानों में तीन चार बातें समान दिखाई देती हैं। पहली बात यह है कि हर एक तत्त्वज्ञान की प्राप्ति के लिए गुरु की आवश्यकता है। यह सिद्धान्त उपनिषदों में भी है कि बिना गुरु के तत्त्वज्ञान नहीं प्राप्त हो सकता। दूसरी बात ब्रह्मचर्य है। यह बात सब तत्त्वज्ञानों में मान्य की हुई दिखाई देती है कि मोक्ष के लिए ब्रह्मचर्य की आवश्यकता है। तीसरी बात अहिंसा का नियम सब तत्त्वज्ञानों को मान्य हुआ दिखाई देता है। केवल पाशुपत-मत में यह नहीं है। उपनयन द्वारा वेदाध्ययन करने के समय जो गुरु होता है उसके अतिरिक्त और तत्त्वज्ञान बतलानेवाले गुरु के अतिरिक्त किसी अन्य धर्म-गुरु का उल्लेख महाभारत में नहीं है। चौथी बात सब तत्त्वज्ञानों में धार्मिक तथा नीति के आचरण की आवश्यकता है। कहा है कि सब तत्त्वज्ञानों में मोक्ष की इच्छा करनेवाले पुरुष को सदाचार नीति और शान्ति की आवश्यकता है अर्थात् यह स्पष्ट है कि नीति या दशविध धर्मों का उपदेश सब मतों में अन्तर्भूत है।

अठारहवाँ प्रकरण

भगवद्गीता-विचार

समस्त प्राचीन संस्कृत-साहित्य में महाभारत और महाभारत के सब आख्यानों में भगवद्गीता श्रेष्ठ है। महाभारत में ही जगह-जगह भगवद्गीता की प्रशंसा है। यह उपनिषद् तुल्य मानी जाती है, इस लिए उसका यहाँ स्वतन्त्र विचार किया जाना आवश्यक है।

भगवद्‌गीता के सम्बन्ध में पहला प्रश्न यह है कि क्या यह ए
ही कर्ता की है या यह भी महाभारत के समान दो-तीन कर्ताओं क
रचना है। हमारे मत से यह एक ही दिव्य कल्पना-शक्ति से निर्मि
की गई है और यह सौति की रचना नहीं है। महाभारत का निर्मा
करते समय सौति के सामने सम्पूर्ण भगवद्‌गीता थी। उसने उसक
स्तुति श्रीकृष्ण के मुख से अनुगीता (अश्व० अ० १६) के प्रसङ्ग
कराई है। भगवद्‌गीता का अनुकरण कर उसने अनुगीता-उपाख्या
को और उद्योगपर्व के १३१वें अध्याय में विश्वरूप-दर्शन को महाभार
में स्थान दिया है। इसके सिवा उसमें जो साख्य और वेदान्त-ज्ञा
बतलाया गया है वह महाभारत-काल के पूर्व का है, अर्थात् सौति
समय के ज्ञान से भिन्न है। भाषा की दृष्टि से, विषय के प्रतिपादन क
दृष्टि से या उत्तम छन्द रचना की दृष्टि से यही अनुमान करना पड़त
है कि गीता को अत्यन्त ही उदात्त कवित्व-शक्ति के पुरुष ने बनाया

कुछ लोगों की यह कल्पना है कि गीता मूल भारती इतिहास
सम्बद्ध नहीं थी और न उसको श्रीकृष्ण ने कहा ही है। उसके
भगवान् नामक गुरु ने कहा है और सौति ने अपने महाभारत
शामिल कर लिया है। यथार्थ में गीता की कल्पना श्रीकृष्ण औ
अर्जुन के अतिरिक्त हो ही नहीं सकती। उसके उपदेश का आरम
जिस श्लोक से होता है वह श्लोक यदि उसमें न हो तो उसे गीत
कहेगा ही कौन? उसका सम्बन्ध भारती युद्ध के ही साथ है। गीत
में बार-बार चर्चा भी यही की गई है कि युद्ध किया जाय या न
अतएव यही कहा जा सकता है कि गीता व्यास अथवा वैशम्पायन
मूल भारत का ही भाग है और यह आवश्यक एवं स्वाभाविक भी है
जिस भारत-ग्रन्थ में श्रीकृष्ण और अर्जुन का प्रधान रूप से इतिहा
दिया गया है उसी में श्रीकृष्ण के तत्त्वज्ञान की भी कुछ चर्चा हो।

रणभूमि में गीता का कहा जाना असम्भव नहीं—कभ
कभी कुछ लोग यह भी कहते हैं कि इतना लम्बा चौड़ा सम्भाषण ठी

युद्ध के समय कहाँ हो सकता है। हमारा मत है कि प्राचीन भारती आर्यों की परिस्थिति का विचार करने से इस प्रकार का सं असम्भव नहीं जान पड़ता। फिर श्रीकृष्ण और अर्जुन का सम्भाष एक घण्टे से अधिक समय तक नहीं हुआ होगा।

गीता अप्रासंगिक नहीं—कुछ लोगों का कथन है कि गीत अप्रासंगिक है। हमारा मत है कि व्यासजी ने इस तत्त्वज्ञान को ब चतुराई से युद्ध के प्रारम्भ में ही स्थान दिया है। जहाँ लाखों आदम मरने मारने को तैयार हुए हों, वहाँ सम्भव है कि धार्मिक हृदय मनुष्य को सचमुच एक प्रकार का मोह हो जाय। इसलिए जो अर्जु 'धर्मशील' कहा गया है उसके मन में इन विचारों से मोह का हो जान अत्यन्त स्वाभाविक है। और यह निर्विवाद है कि ऐसे ही अवसर पर तत्त्वज्ञान की चर्चा का महत्त्व भी है। सम्पूर्ण भारत ग्रन्थ में जो कुछ प्रतिपादन किया गया है उसका समर्थन करने का मुख्य स्थान इस भयङ्कर युद्ध का आरम्भ ही है और यही सोचकर व्यासजी ने ठीक युद्धारम्भ में इस परमोच्च तत्त्वज्ञान को स्थान दिया है।

श्रीकृष्ण के मत का प्रतिपादन—यह मान लेने में कोई आपत्ति नहीं कि श्रीकृष्ण के मत भगवद्गीता में बताये हुए मतों के सदृश थे। यह माना जा सकता है कि श्रीकृष्ण और अर्जुन के संवाद को जिस रूप में व्यास ने सञ्जय के मुख से प्रकट किया है, उसी रूप में वह संवाद हुआ था। यह प्रश्न अनुचित है कि गीता में प्रत्यक्ष श्रीकृष्ण के शब्द हैं या नहीं। वस्तुत श्रीकृष्ण के मत का तात्पर्य व्यास के शब्दों में वर्णित हुआ है।

एक श्रीकृष्ण, तीन नहीं—कुछ लोगों ने यह प्रश्न उठाया है कि गीता के श्रीकृष्ण और भारती युद्ध के श्रीकृष्ण भिन्न भिन्न हैं। कुछ लोग तीन श्रीकृष्ण मानते हैं—एक गोकुल में बाललीला करनेवाला श्रीकृष्ण, भारतीय युद्ध में शामिल होनेवाला द्वारकाधीश श्रीकृष्ण, और गीता का उपदेश करनेवाला भगवान् श्रीकृष्ण।

एक श्रीकृष्ण के तीन श्रीकृष्ण कर देने की कुछ भी आवश्यकता नहीं है। ऐतिहासिक दृष्टि से उक्त कल्पना असम्भव है। गीता में श्रीकृष्ण को जो भगवान् कहा है उसका कारण यही है कि हर एक तत्त्वज्ञान के उपदेशक के लिए भगवान् संज्ञा का उपयोग किया जाता है। महाभारत-काल में यानी ईसवी सन् के ३०० वर्ष पूर्व यह किसी की धारणा न थी कि गीता का उपदेशक श्रीकृष्ण और भारती युद्ध में अर्जुन का सारथ्य करनेवाला श्रीकृष्ण दोनों भिन्न-भिन्न हैं। अतः यह कल्पना करना ही भूल है कि भगवान् श्रीकृष्ण अलग हैं और यादव श्रीकृष्ण अलग हैं। यह कल्पना भी अशुद्ध है कि गोकुल का श्रीकृष्ण महाभारत के श्रीकृष्ण से भिन्न है। महाभारत से यह दिखलाया जा सकता है कि श्रीकृष्ण ने पहले मथुरा में जन्म लिया, फिर कंस के डर से वह गोकुल में पला, और गोकुल की गोपियाँ उसे ईश-भाव से प्यार करती थीं। नारायणीय उपाख्यान में यह बात है कि गोकुल से मथुरा में आकर कंस को मारनेवाला श्रीकृष्ण और पाण्डवों की सहायता करके जरासन्ध तथा दुर्योधन को मरवानेवाला श्रीकृष्ण एक ही है। शान्तिपर्व के ३३९वें अध्याय में दशावतारों का जो वर्णन है उसमें श्रीकृष्णावतार के विशिष्ट कृत्यों का कथन किया गया है। अतएव यह कल्पना ग़लत है कि श्रीकृष्ण तीन थे और ईसवी सन् के पश्चात् उनका एकीकरण हो गया।

गीता दशोपनिषदों के अनन्तर और वेदाङ्गों के पूर्व की है—भगवद्गीता में उपनिषदों एवं सांख्य तथा योग के तत्त्वज्ञानों का उल्लेख प्रधान रीति से किया गया है, अतएव वह इन तीनों के बाद की है। इसी प्रकार यह अनुमान करने के लिए कुछ प्रमाण मिलते हैं कि वह वेदाङ्गों के पूर्व की है।

भगवद्गीता के समय की परिस्थिति—श्रीकृष्ण के अवतार के समय भारतीय आर्य भारत के पञ्जाब, मध्यदेश, अयोध्या, सौराष्ट्र आदि प्रान्तों में बस चुके थे, उत्तम धार्मिक व्यवस्था के कारण उनकी

सब प्रकार की उन्नति हुई थी, देश में क्षत्रियों की संख्या बढ़ गई थी। दक्षिण में और पूर्व के द्रविड़ देशों में द्रविड़ों की संख्या बढ़ी थी। लोगों की नीतिमत्ता उत्तम होने के कारण आपस में वैर भाव अथवा रोगों की उत्पत्ति कम थी।

राष्ट्रों की उच्च और नीच गति—परन्तु कोई देश कभी उन्नति के परमोच्च पद पर सदैव नहीं रह सकता। नीति, शौर्य, विद्या आदि में सुसस्कृत होकर परमोच्च पद को पहुँचे हुए प्राचीन भारतवर्ष में श्रीकृष्ण के समय में एक मनुष्य के हठ से भयङ्कर युद्ध का प्रसङ्ग आ गया और उस युद्ध से भारतवर्ष की अवनति का आरम्भ हुआ। हजारों नहीं, लाखों मनुष्य उस युद्ध में मृत्यु को प्राप्त हुए और देश की मनुष्य संख्या घट गई।

प्रवृत्ति और निवृत्ति का उचित उपयोग—किसी देश की सब प्रकार से उन्नति होने के लिए उस देश के लोगों में प्रवृत्ति और निवृत्ति का उचित उपयोग होना चाहिए। जब कोई समाज केवल प्रवृत्ति-परायण बन जाता है या उसमें निवृत्ति का ही आडम्बर बढ़ जाता है तब वह समाज अधोगामी होने लगता है। भारतीय आर्यों में उस समय प्रवृत्ति एवं निवृत्ति के सद्‌गुण एक समान थे। इसी से वे उन्नति के परमोच्च शिखर पर पहुँचे थे। परन्तु भारती-युद्ध के समय इन गुणों की समानता में कुछ अन्तर पड़ गया। एक ओर प्रवृत्ति की प्रबलता हुई तो दूसरी ओर निवृत्ति का आडम्बर बढ़ने लगा। प्रवृत्ति की प्रबलता का पहला परिणाम लोभ है।

भारती युद्धकालीन परिस्थिति—पृथ्वी का भार कम करने के लिए विधाता ने आर्य भूमि म लोभ का बीज बो दिया और तीन जगहों में नाश के केन्द्र-स्थान बना दिये। कंस, जरासन्ध और दुर्योधन ये तीन लोभी और महत्त्वाकाङ्क्षी व्यक्ति उत्पन्न कर उसने अपना इष्ट कार्य सिद्ध किया। निर्लोभता का आदर्श दिखाने और सत्य का पक्ष सँभालने के लिए उस समय श्रीकृष्ण संसार में उपस्थित हुए थे।

निवृत्ति का निरोध—एक ओर श्रीकृष्ण को प्रवृत्ति परायण ोगों को निवृत्ति का पाठ सिखलाने का कार्य करना पडा तो दूसरी ोर उन्हें निवृत्ति की बाढ को बाँधना पड़ा। श्रीकृष्ण का समय उप-ाषदों के विचारों का समय था। उस समय मुख्यत वेद, वेदान्त, ांख्य तथा योग के मत प्रचलित थे। कुछ लोग कहते थे कि वेद में ताये हुए यज्ञादिक कर्म ही करे, कुछ लोग कहते थे कि कर्म ेलकुल ही न करे, ससार छोड़कर मनुष्य जङ्गल में चला जाय। ऐसी परिस्थिति में श्रीकृष्ण ने गीता का उपदेश कर एक ओर कर्म का आडम्बर तोडा तो दूसरी ओर निवृत्ति का, साथ ही सब लोगों के लिए सुगम नवीन भक्तिमार्ग प्रतिपादित किया।

वेदिक आर्यों का स्वभाव—प्राचीन काल के आर्यों की आश्रम व्यवस्था से स्पष्ट दिखाई देता है कि उस समय लोग दोनों वृत्तियों का उचित आश्रय लेकर रहते थे। उनके चार आश्रमों में दो प्रवृत्ति के थे तो दो निवृत्ति के थे। परन्तु ऋग्वेद काल के अन्त में प्रवृत्ति की प्रबलता हुई। वाजपेय, राजसूय अश्वमेध और पुरुषमेध की धूम मची। ऐसे समय में उपनिषदों के विचार आगे आये। विचारवान् लोगों ने निश्चय किया कि तप करने में ही मनुष्य-जन्म की सफलता है। फलत जिसके मन में आया वह उठा और चला जङ्गल में तपस्या करने के लिए। इस प्रकार उपनिषदों के निवृत्ति मार्ग का जब आडम्बर बढने लगा तब श्रीकृष्ण ने अपने दिव्य उपदेश से उसे तोडा। उन्होंने एकान्तिक निवृत्ति और एकान्तिक प्रवृत्ति दोनों का निषध किया और लोगों को मध्यवर्ती बिन्दु पर लाने का प्रयत्न किया।

कर्मयोग का उपदेश—पहले के आचार्यों के सिद्धान्तों को श्रीकृष्ण ने अमान्य नहीं किया। वैदिकों की कर्मनिष्ठा, सांख्यवालों की ज्ञाननिष्ठा, योगियों का चित्तनिरोध और वेदान्तियों के संन्यास का उन्होंने आदर किया है। परन्तु हर एक मत ने जो यह प्रतिपादित किया है कि हमारी इतनी ही इति-कर्तव्यता है उसका उन्होंने निषध किया है।

हर एक मत को उचित महत्त्व देकर, उन सबका समन्वय करके श्रीकृष्ण ने उनका उपयोग अपने नये कर्तव्य सिद्धान्त के लिए किया है। उन्होंने गीता में अर्जुन को यह बताया है कि वेद, वेदान्त, सांख्य और योग का स्वीकार करना उचित है। साथ ही यह भी बताया है कि इन सब में जो अपनी अपनी शेखी बघारी गई है वह सब व्यर्थ है। उन्होंने समझाया है कि प्रवृत्ति को निवृत्ति रूप और निवृत्ति को प्रवृत्ति रूप कैसे देना चाहिए तथा अपना कर्तव्य कैसे करना चाहिए।

नवीन भक्ति मार्ग—भारतवर्ष में जब आर्यों की बस्ती सब जगह फैली तब चौथा शूद्र वर्ण उनमें आकर मिला। उस समय अनेक मिश्र वर्ण उत्पन्न हुए। बहुतेरे वैश्य खेती करने लगे और धीरे धीरे वेद और शिक्षा से पराङ्मुख हो गये। स्त्रियाँ सब वर्णों की होने लगीं इससे वे भी अपढ़ ही रहीं। ऐसे बड़े जनसमूह के लिए यज्ञ, सन्यास या योगमार्ग बन्द हो गये। उस समय यह प्रश्न सामने आया कि अज्ञानी लोगों के लिए परमपद की प्राप्ति सम्भव है या नहीं। ब्राह्मणों और क्षत्रियों का यह मत था कि ये मोक्ष के पात्र नहीं हैं। परन्तु सामान्य जनसमूह पर श्रीकृष्ण का अत्यन्त प्रेम था। उनका बचपन स्त्रियों, वैश्यों और शूद्रों में के बीच में ही बीता था। उन्होंने देखा था कि वे अपने इष्टदेव का कैसा निःसीम और निष्काम प्रेम करते हैं। इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि ऐसी स्थिति में उन्होंने यह प्रतिपादन किया कि परमेश्वर या उसकी किसी दिव्य विभूति का अतिशय प्रेम करने से वे लोग मोक्ष प्राप्त करेंगे। भक्तिमार्ग का रहस्य अर्जुन को समझाते समय उन्होंने गीता में स्पष्ट कहा है कि भक्तिमार्ग से स्त्रियाँ, वैश्य, शूद्र, बल्कि चाण्डाल भी परमगति को प्राप्त करेंगे। स्वभावतः श्रीकृष्ण का यह भक्ति मार्ग धीरे धीरे और मार्गों को पीछे हटाता हुआ आगे बढ़ा, यहाँ तक कि उसकी श्रेष्ठता आज भी सारे भारतखण्ड में स्थापित है।

कर्मयोग का सिद्धान्त—तत्त्ववेत्ताओं के सम्मुख यह महत्त्व का (प्रश्)न सदा उपस्थित होता है कि इस जगत् में मनुष्य की इतिकर्तव्यता (क्)या है। कर्म और अकर्म का वाद अनादि है। श्रीकृष्ण ने गीता (के) अठारहवें अध्याय में इसकी चर्चा की है और बताया है कि मनुष्य (मो)क्ष की प्राप्ति के लिए यज्ञ याग, ज्ञान-वैराग्य, योग-भक्ति जो चाहे (क)रे, परन्तु उसे कर्म करना ही पड़ेगा। यह लोक कर्म से बँधा है। (नि)यत या प्राप्त कर्म छोड़ देना सम्भव नहीं। अतएव मनुष्य को (च)ाहिए कि वह कर्म करता रहे। परन्तु इस बात का घमण्ड न करे (कि) उसके कर्म की सिद्धि होनी ही चाहिए। वह इस भावना से कर्म (क)रे कि मैं अपना कर्तव्य करता हूँ, वह सिद्ध हो या न हो।

फल की लालसा का त्याग—यहाँ सहज ही यह प्रश्न उठता है कि यदि शुद्ध भावना से विहित कर्म करने पर भी मनुष्य को उसकी सिद्धि न मिलेगी तो विहित आचरण से लाभ ही क्या। श्रीकृष्ण ने इसका मार्मिक उत्तर दिया है।

कर्म का फल तीन प्रकार का है—इष्ट, अनिष्ट या मिश्र। परन्तु यह किसके लिए? जिसकी दृष्टि फल पर है उसी के लिए। जिसने फल का त्याग किया उसे चाहे जो फल मिले सब समान ही है। मनुष्य जो कर्म करता है उसके लिए पाँच कारणों की आवश्यकता होती है—अधिष्ठान, कर्ता, करण, विविध चेष्टा और दैव या ईश्वरेच्छा। इससे जान पड़ता है कि कर्म के फल को देनेवाली कुछ ऐसी बातें हैं जो अपने अधीन नहीं हैं। इसलिए जो कर्म कर्तव्य समझकर किया जाता है वही ठीक है। उसका इच्छित फल हमेशा नहीं मिलता है।

ईश्वराज्ञा तथा ईश्वरार्पण बुद्धि—शास्त्र का काम है कि वह कर्तव्य का निश्चय करे। शास्त्र से मतलब उन प्राचीन बुद्धिमान् लोगों से है जिन्होंने अनुभव से नियम बनाये हैं। शास्त्र की सम्मति के (ब)िना भी यदि सात्त्विक बुद्धि से कर्तव्य का निश्चय किया जाय तो भी (उ)समें एक प्रकार का महत्त्व है। मनुष्य की सात्त्विक बुद्धि उसे जो कुछ

भक्ति की मीमांसा होती गई तब सम्भव है कि भक्ति को उस
उपमा दी गई हो जो असती का जार से रहता है।
पट विषयक दूसरा आक्षेप है। यह सच है कि इसका उद्गम
रत में है। परन्तु यह कल्पना 'भारत' में नहीं है। वह भारत
की भ्रमपूर्ण धारणा के कारण पीछे से निकली है। भारत में
र्णन है कि श्रीकृष्ण ने भीष्म, द्रोण आदि लोगों को पाण्डवों के
कूटयुद्ध के द्वारा मरवाया।
सामान्य नीति के अपवादक प्रसंग—अहिंसा, सत्य, अस्तेय
नीति तथा धर्म के परमतत्त्व सब लोगों के एक समान मान्य
परन्तु इन तत्त्वों के कुछ अपवादक प्रसङ्ग हैं या नहीं? उदा-
र्थ यदि कोई आततायी अधर्म से हमें मारने आवे तो क्या हम
मारें या उसके हाथ से हम मरें? अहिंसामत की अत्युक्ति करने-
तो यही कहेगा कि हमें ही मरना चाहिए। हम मरें या वह
हिंसा तो होगी ही। बेहतर है कि आततायी को ही मारो, क्योंकि
तायी के हाथ से मरने में हिंसा तो होती ही है और अधर्म को भी
जन मिलता है। इसलिए धर्मशास्त्र में अहिंसाधर्म के लिए अप-
रक्खा गया है कि आततायी को मारो। द्रोणवध के प्रसङ्ग को
लीजिए। जो अस्त्र नहीं जानते थे उन्हें द्रोण अधर्म से अस्त्र द्वारा
न से मारते थे। इस दशा में श्रीकृष्ण ने सलाह दी कि द्रोण को

तब भक्ति की मीमांसा होती गई तब सम्भव है कि भक्ति को उस की उपमा दी गई हो जो असती का जार से रहता है।

कपट विषयक दूसरा आक्षेप है। यह सच है कि इसका उद्गम महाभारत में है। परन्तु यह कल्पना 'भारत' में नहीं है। वह भारती कथा की भ्रमपूर्ण धारणा के कारण पीछे से निकली है। भारत में ही वर्णन है कि श्रीकृष्ण ने भीष्म, द्रोण आदि लोगों को पाण्डवों के हाथ कूटयुद्ध के द्वारा मरवाया।

सामान्य नीति के अपवादक प्रसंग—अहिंसा, सत्य, अस्तेय आदि नीति तथा धर्म के परमतत्त्व सब लोगों के एक समान मान्य हैं। परन्तु इन तत्त्वों के कुछ अपवादक प्रसङ्ग हैं या नहीं? उदाहरणार्थ यदि कोई आततायी अधर्म से हमें मारने आवे तो क्या हम उसे मारें या उसके हाथ से हम मरें? अहिंसामत की अत्युक्ति करनेवाला तो यही कहेगा कि हमें ही मरना चाहिए। हम मरें या वह मरे, हिंसा तो होगी ही। बेहतर है कि आततायी को ही मारो, क्योंकि आततायी के हाथ से मरने में हिंसा तो होती ही है और अधर्म को भी उत्तेजन मिलता है। इसलिए धर्मशास्त्र में अहिंसाधर्म के लिए अपवाद रक्खा गया है कि आततायी को मारो। द्रोणवध के प्रसङ्ग को ही लीजिए। जो अस्त्र नहीं जानते थे उन्हें द्रोण अधर्म से अस्त्र द्वारा जान से मारते थे। इस दशा में श्रीकृष्ण ने सलाह दी कि द्रोण को

वह अधर्म नहीं था। विचार करने से ज्ञात होगा कि जहाँ-जहाँ ने पाण्डवों से कूटयुद्ध करवाया, वहाँ वहाँ युद्ध की नीति की कुछ भी अनुचित न था। धर्मशास्त्र ने भी अपवाद माने ऐसे अपवादक प्रसङ्ग में ही श्रीकृष्ण ने कूटयुद्ध का करने की सलाह दी।

श्रीकृष्ण का दिव्य उपदेश—गीता में श्रीकृष्ण ने जिस का उपदेश किया है वह सर्वकाल में तथा सब देशों में सब आदर की वस्तु रहेगा। कर्म की सिद्धि हो या न हो इस मन को चञ्चल न होने देकर अपना कर्तव्य कर्म इस भावना चाहिए कि मैं परमेश्वर पर भरोसा रखकर परमेश्वर की इच्छा